CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

नवम्बर १९६९

६० पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ५० : अंक ११ : आश्विन : २०२५

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

संस्थापक एवं आद्यसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

⊙

१	भक्तोंका रक्षक	[वैदिक-प्रार्थना]	२४७
२	केशवचन्द्रसेनका ईसाई मतके प्रति दृष्टिकोण	श्री भवानीलाल भारतीय	२४८
३	दीपावली विज्ञान	श्री रणछोडदास ' उद्धव '	२५३
४	वैदिकसाहित्यमें समन्वयवाद	श्री शोभनाथ पाठक	२५९
५	यज्ञके वस्त्र	श्री पं. वीरसेनजी	२६१
६	हुमायुंकी सहृदयता – एक कोरी कल्पना	श्री. प्रा. ज. रा. कस्तूरे	२६६
७	महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज	श्री वेदव्रत शर्मा	२६९
८	ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	६५ से ८०

' वैदिक धर्म ' वार्षिक मूल्य म. आ. से ६) रु.

वी. पी. से रु. ७.००, विदेशके लिये रु. ८.०० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानवजीवनके रहस्योंसे भरपूर

एक संग्रहणीय खजाना

जी हां, मानवशरीरकी रचना विधाताके कौशल्यकी चरम सीमा है। शरीर स्वयंमें एक रहस्यमय विश्व है, जिसके कई रहस्योंका स्फोट आजतक भी नहीं हो पाया है।

मानवशरीरविज्ञानके विज्ञोंने इस शरीरका जितना विश्लेषण आज किया है, उससे कहीं अधिक और यथार्थ विश्लेषण हमारे प्राचीन ऋषिमहर्षियोंने इस शरीरका किया था। उन्होंने आध्यात्मिक, आधि-दैविक और आधिभौतिक इन तीन भागोंमें मानव शरीरके सारे रहस्योंका उद्घाटन किया है। इन सारे रहस्योंको यदि आप जानना चाहते हैं, तो अवश्य पढिए श्री पं. श्री दा. सातवलेकर लिखित अथर्व-वेदके सुबोध भाष्यके पांचों भाग। वे पांच इसप्रकार हैं—

(१) ब्रह्मविद्या प्रकरण। (२) मातृभूमि और स्वराज्यशासन। (३) गृहस्थाश्रम।
(४) आरोग्य और दीर्घायुष्य। (५) मेधाजनन, संगठन और विजय।

इनमें प्रथम चार भाग विक्रीके लिए तैय्यार हैं, अन्तिम एक भाग अभी प्रेसमें है। उनके भी शीघ्र छपनेकी आशा है।

प्रथमभागमें— 'ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पाशवी सामर्थ्यका आत्मिकशक्तिसे प्रतिकार, गुह्य अध्यात्मविद्या, पूजनीय ईश्वर, आत्मशक्ति, ब्रह्माण्ड देह, आत्मज्योति, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी, आदि कई आध्यात्मिकज्ञानके रहस्योंका संग्रह है।

दूसरे भागमें— 'वैदिकराष्ट्रगीत, राजाका कर्तव्य, राष्ट्रका अभ्युदय, राजाका चुनाव, कर, दुष्टका नाश, शत्रुपर विजय, युद्धनीति, विजयप्राप्ति, स्वशक्तिका विस्तार, युद्धसाधन' आदि कई राज्यशास्त्र, विषयक बातोंका वर्णन है।

तीसरे भागमें— 'पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू एवं पतिके गुण, वर और कन्याके गुण एवं उनका चुनाव, वैदिकविवाहका स्वरूप, धनार्जन, गोरक्षण, आदर्शपतिपत्नी, वीरपुत्रकी उत्पत्ति, रमणीय घर, भाग्यप्राप्ति' आदि गृहस्थाश्रमके सम्बन्धमें कई अत्यन्त उपयोगी बातोंकी विशद व्याख्या है।

चौथे भागमें— 'प्राणविद्या, दीर्घायुप्राप्तिका उपाय, अमरशक्तिकी प्राप्ति व उसका उपाय कल्याणकी प्राप्ति, आत्मरक्षण, वर्चःप्राप्ति, रोगनिवारण, यक्ष्मानाश, विषयनाश, आनुवंशिक रोगोंकी चिकित्सा, हिप्नोटिज्म, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा' आदि कई विषयोंका वर्णन है।

पांचवें भागमें— 'मेधाजनन, मेधाकी प्राप्ति, मित्रतावर्धन, वनस्पतिविज्ञान, ब्रह्मचर्य, संगठन, मातृभूमिकी रक्षा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, धनप्राप्ति एवं आन्तरिक तथा ब्रह्मशक्तियों पर विजय' आदि कई उल्लेखनीय बातोंका वर्णन है।

सभी भाग मूलमंत्र, अर्थ, भावार्थ, तथा स्पष्टीकरणसे युक्त डबलक्राऊन ८ पेजी साइजके क्रीमवोव पेपरसे समृद्ध एवं आकर्षक गेटअपसे सम्पन्न हैं। प्रत्येक भागकी कीमत १२ रु. (डा. व्य. पृथक्) है। भागोंकी छपाई सीमित संख्यामें ही हुई है। अतः न पानेकी निराशासे बचनेके लिए आज ही अग्रिम धन भेजकर पार्सलसे या वी. पी. से मंगायें। मुफ्त सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

भक्तोंका रक्षक

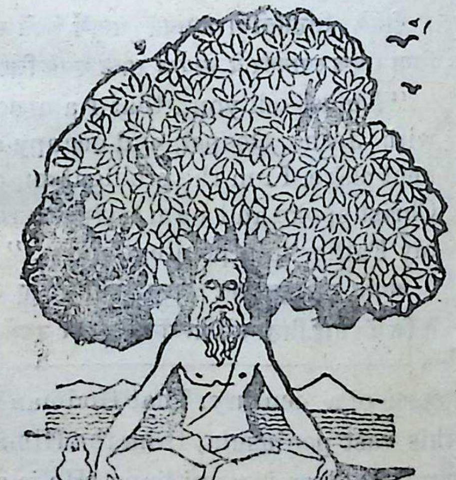

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो
भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने
माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥

(ऋ० ४।४।३)

हे (अग्ने) अग्ने ! (तूर्णितमः) अत्यन्त वेगवान् तू (स्पशः) अपने गुप्तचरोंको (प्रति वि सृज) चारों ओर प्रेरित कर । (अदब्धः) किसीसे न दबनेवाला तू (अस्याः विशः) इस प्रजाका (पायुः भव) पालन करनेवाला हो । (यः अघशंसः नः दूरे) जो पापी हमसे दूर है, और (यः नः अन्ति) जो हमारे पास है, उनमेंसे (व्यथिः) कोई भी दुःख देनेवाला शत्रु (ते माकिः आ दधर्षीत्) तेरे भक्तोंको दुःख न दे ।

तेजस्वी परमात्मा सर्वत्र व्यापक होनेके कारण उसकी नजरसे कोई भी पापी बच नहीं सकता । यह परमात्मा सभी प्रजाओंका पालन करनेवाला है, इसलिए जो पापी दूर अथवा पास हैं, उनके कारण इस परमात्माके भक्तोंको कुछ भी दुःख नहीं होता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केशवचन्द्रसेनका ईसाईमतके प्रति दृष्टिकोण

(लेखक— डॉ. भवानीलाल भारतीय, अजमेर)

☆

६ मई सन् १८६६ ई. को कलकत्ता मेडिकल कालेजके थियेटर हालमें केशवकी ईसामसीह सम्बन्धी प्रथम और प्रसिद्ध वक्तृता हुई। इसका नाम था Jesus Christ : Europe and Asia इस भाषणमें केशवने इस बातपर जोर दिया कि ईसामसीह एशियावासी थे, अतः हम एशियावासियोंको उन्हें अपने महाद्वीपका पैगम्बर मानकर ही उनके व्यक्तित्व और विचारोंसे अपना सान्निध्य स्थापित करना चाहिये। उनके इस भाषणका निम्न उद्धरण दृष्टव्य है—

Was not Jesus an Asiatic ? I rejoice, yea, I am proud in that I am an Asiatic. Infact Christianity was founded and developed by Asiatics in Asia. When I reflect on this, my love for Jesus becomes a hundredfold intensified. I feel him nearer my heart, and deeper in my national sympathies. "

अर्थात् क्या ईसा एशियावासी नहीं था ? मुझे हर्ष है नहीं अभिमान है कि मैं भी एशियाई हूं। वस्तुतः ईसाइयतको ऐशियावालोंने ऐशियामें ही स्थापित और उन्नत किया है। मैं जब इस बातपर विचार करता हूं तो मेरा ईसाके प्रति प्रेम सौगुना बढ जाता है। मैं उसे अपने हृदयके अधिक निकट और अपनी राष्ट्रीय भावनामें अधिक गहरा पाता हूं।

इस वक्तृतासे लोगोंपर प्रथमबार प्रकट हो गया कि केशवका ईसाइयतकी ओर कितना झुकाव है ? अपने दूसरे व्याख्यानमें तो उन्होंने स्वयं ही प्रकट कर दिया कि वे ईसासे प्रारंभमें ही प्रभावित हो गये थे और उनके मत तथा सिद्धान्तोंके निर्माणमें ईसाका कितना अधिक प्रभाव काम कर रहा था। उन्होंने कहा-" लगभग चौथाई शताब्दी (२५ वर्ष) से मैं ईसाका अध्ययन कर रहा हूं। वह दैवी मनुष्य, अथवा जैसा कि लोग कहते हैं आधा ईश्वर और आधा मनुष्य, हिमालयसे कन्याकुमारी तक विस्तृत इस महादेशके करोडों दुखी प्राणियोंका त्राण करता हुआ और उन्हें दिव्य ज्योतिका दर्शन कराता हुआ फिर रहा है। भारतके इतिहासमें वह एक शक्तिशाली तथ्य है। वह हमारे लिए एक जीवित, जाग्रत शक्ति है। हम उसे देखते हैं और उससे सम्बन्ध स्थापित करते हैं।'[1]

ईसाके सिद्धान्तोंको केशवने सम्पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लिया। एक स्थानपर वे अत्यन्त स्पष्ट रूपसे लिखते हैं—

" I must tell you...that I am connected with Jesus Gospel, and occupy a prominent place. I am the prodigal son of whom Christ spoke and I am trying to return to my Father in a penitent spirit. "

अर्थात् मुझे एक बात अवश्य कहनी चाहिए और वह यह है कि मैं ईसाई सिद्धान्तसे सम्बन्धित हूं और उसमें एक महत्त्व-

1. " Christ has been my stduy for a quarter of a century. That Godman they say half God and half Man walks daily all over this vast peninsula, from the Himalayas to cape comorin, enlightening and sanctifying its leeming millions. He is a mighty realitly in Indian history. He is to us a living and moving spirit. We see him and commune with him." Lectures in India. P. 330, India asks; who is Christ ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण स्थान रखता हूं। मैं वह लाडला पुत्र हूं जिसके विषयमें ईसाने कहा था और अब मैं प्रायश्चितकी भावना लेकर अपने पिताके पास जाना चाहता हूं।

ईशपुत्र ईसाके प्रति अपने भावुकता पूर्ण उद्‌गारोंको व्यक्त करते हुए केशवन कहा—

"The Father can not be an example of sonship. Only the son can show what the son ought to be. Invain do I go to the vedas or to Judaism to learn sonship. That I learn at the feet of my sweet Christ, my Father's beloved son."[2]

अर्थात् पुत्रके कर्तव्योंके लिए पिता आदर्श नहीं हो सकता। पुत्र ही बता सकता है कि पुत्रको कैसा होना चाहिए? पुत्रके कर्तव्योंको सीखनेके लिए वेदों और यहूदी मतके निकट जाना व्यर्थ ही है। यह तो मैं अपने प्यारे ईसा, मेरे पिताके प्यारे पुत्रके चरणोंमें बैठकर सीख सकता हूं।

केशवने वेदोंके विषयमें यह व्यर्थ हीं कहा है हम उनसे पुत्रके कर्तव्योंको नहीं सीख सकते। वेदके अनेक मंत्रोंमें ईश्वर और जीवका सम्बन्ध पिता पुत्रके तुल्य बताया गया है। पिता ही नहीं ईश्वर तो हमारा माताके तुल्य पालन पोषण और संरक्षण भी करता है, अतः वह पिताके साथ साथ हमारी माता भी है। एक मंत्रमें कहा गया है–

त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।

हे शतक्रतो परमात्मन्, आप ही हमारे पिता और आप ही हमारी माता हैं। इसी प्रकार "इन्द्रं क्रतु न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा" आदि मंत्रोंमें भी इसी पिता पुत्र सम्बन्धका ही वर्णन किया गया है ऐसे उदात्त विचारोंके वेदोंमें होते हुए भी यदि केशव ईसाके चरणोंमें ही शरण ग्रहण करें तो यह उनकी स्वदेशी संस्कृतिके प्रति निष्ठाकी न्यूनता ही कही जायगी।

भावुकता पूर्ण भाषामें ईसाके प्रति प्रकट की गई। केशवकी अन्य श्रद्धाञ्जलिका नमूना देखिए—

"My Christ, my sweet Christ, the brightest jewels of my heart, the necklace of my soul- for twenty years have I cherished Him in this my miserable heart."[3]

अर्थात् ईसा, मेरे प्रिय ईसा, मेरे हृदयके अत्यन्त प्रकाशमान रत्न, मेरी आत्माके कण्ठहार, मैंने अपने उस दुःखी हृदयमें उसे २० वर्षोंसे प्रेमपूर्ण स्थान दे रक्खा है।

राममोहनरायने ईसाई सिद्धान्तोंके प्रति जिस श्रद्धापूर्ण भावको कई वर्ष पूर्व व्यक्त किया था, उसकी चरम परिणति अब हमें केशवके विचारोंमें स्पष्ट दिखाई देती है। उनके सभी व्याख्यान ईसा और ईसाईयतके प्रति अपने अटूट विश्वासको प्रकट करते हैं। सन् १८७९के जनवरी मासमें दिये गये अपने एक व्याख्यान Am I an inspired Prophet? में उन्होंने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि ईसाके अनन्तर ईसाई संत जॉन और पालका उनपर बडा भारी प्रभाव पडा है।

ईसा और ईसाइयतके प्रति उनके ये उद्‌गार केवल शाब्दिककथन मात्र ही नहीं थे। उन्होंने ईसाइयतके दर्शन और ईसाई आचारको भी बिना किसी झिझकके स्वीकार कर लिया था। ईसाई मतवादका आधार है पिता, पुत्र और पवित्र आत्माके त्रित्व (Trinity) में विश्वास रखना। इस त्रित्व पर ही ईसाई विश्वासका ढांचा खडा किया गया है। केशवने इस सिद्धान्तको हृदयसे स्वीकार कर लिया था। सन् १८८२ में उन्होंने इस पर एक व्याख्यान दिया।

That Marvellous Mystery the trinity रोमां रोलां ने लिखा है:— Keshab not only accepted and adopted it (trinity) but extolled with gladness and was enlightened by it" अर्थात् केशवने न केवल ईसाई त्रित्वको स्वीकार ही किया, अपितु प्रसन्नतापूर्वक उसकी प्रशंसा की और उससे प्रेरणा भी पाई। केशवके शब्दोंमें त्रित्ववादका सिद्धान्त विश्वकी धार्मिक चेतनाकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है।[4]

2. Lectures in India. Vol. II p. 25.
3. Lecture: India Asks, who is Christ? Easter 1879
4. The loftiest expression of the worlds religious consciousness.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फर्कुहरके एक संस्मरणसे तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि केशव द्वारा स्थापित 'नव विधान' ने एकेश्वरवादके स्थान पर ईसाई त्रित्वके सिद्धान्तको ही अपना मत स्वीकार कर लिया था। अपनी पुस्तकमें एक स्थान पर उसने लिखा है—

Some eleven or twelve years ago, in a brief article, I had ignorantly spoken of all Brahmos as Unitarians. In a courteous note, the only letter I received from Mr. Mozoomdar, he proteshed against the statement so far as the church of the new Dispensation was concerned, declaring himself and his fellow-believers to be Trinitarians"[5] अर्थात् लगभग ११, १२ वर्ष पूर्व एक छोटेसे लेखमें मैंने भूलसे सब ब्राह्म लोगोंको एकत्ववादी लिख दिया था। उसके उत्तरमें मुझे श्री प्रतापचन्द्र मजूमदारका एक सद्भावनापूर्ण उत्तर मिला जिसमें उन्होंने इस बातका विरोध किया था कि नव विधान समाज एकत्ववादी है। उन्होंने लिखा कि वे और उनके सहधर्मी त्रित्ववादी हैं।

अब हम रोमां रोलांके शब्दोंमें ही पूछना चाहते हैं?

Did anything still separate him from Christianiy ?"[6] क्या अब भी वे ईसाईमतसे पृथक समझे जायेंगे। यह तो हुई दार्शनिक सिद्धान्तकी बात। इस बातको भी हम सप्रमाण कह सकते हैं कि केशवने व्यक्तिगत रूपमें और अपनी नव स्थापित 'नव विधान' समाजके कार्यक्रमके अन्तर्गत अनेक ईसाई आचारोंको स्वीकार कर लिया था। रोमां रोलांकी साक्षी प्रस्तुत की जाती है" He celebrated Christmas by a fast within a small circle of intimate friends."

अर्थात् वह अपने मित्रोंकी एक छोटी मण्डलीमें उपवासके द्वारा क्रिसमसपर्व मनाते थे। उनका यह व्यक्तिगत आचरण धीरे धीरे नवविधान समाजमें भी प्रविष्ट होने लगा और धीरे धीरे हम देखते हैं कि बपतिस्मा आदि ईसाई संस्कार भी उक्त समाजमें स्थान प्राप्त करने लगे। रोमां रोलां ने लिखा है—

He instituted the sacramental ceremonies of Christianity in his Samaj, on March 6, 1881, he celebrated the Blessed Sacrament with rice and water instead of bread and wine, and three months later the Sacrament of baptism "[7] अर्थात् उन्होंने ईसाइयतके धार्मिक संस्कारोंको अपने समाजमें स्थान दिया। ८ मार्च १८८१ को उन्होंने रोटी और शराबके स्थानपर चावल और पानीका प्रयोग करते हुये Blessed Sacrament नामक संस्कार सम्पन्न किया, इसके तीन मास पश्चात् उन्होंने बपतिस्माका संस्कार किया।

इसप्रकार हम देखते हैं कि क्या आचार और क्या विचार, सब प्रकारसे केशव ईसाइयतकी बातें ग्रहण कर रहे थे। ऐसी परिस्थितिमें यदि लोग यह धारणा बना लें कि केशव ईसाई हो गये या होनेको तैयार थे, तो उनके इस कथनको सर्वथा निराधार नहीं कहा जा सकता। कइयोंने यह अनुमान लगाया कि केशव ईसाई बननेवाले हैं।[8] मैक्समूलर जैसे मताग्रही व्यक्तियोंने तो यहांतक कहा कि केशव उन व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छे और सच्चे ईसाई हैं जो अपनेको ईसाई कहते हैं और जिनके लिये साधारण अर्थोंमें इस शब्दका प्रयोग होता है।"[9]

5. Modern Religious Movements in India p. 68

6. Life of Ramakrishna.

7. His enthusiam for Christ led many to believe that he was about to become a christian." Modern Religions movements in India. p. 45.

8. As to Keshab chandra Sen, he was more of a true Christian than many who called themselves christians, and who are christians in the ordinary sense of the word." "Ram Mohan to Ramkrishna." p. 61.

9 His ardour or a neophyte was such that he made his friends call him Jesudas, or the servant of Jesus."

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहावत है कि नया मुसलमान ऊंचे स्वरसे नमाज पढता है। इसीप्रकार ईसाईके प्रति इस नवीन आकर्षणके कारण केशवने अपने आपको 'ईसुवास केशव' कहलाना पसन्द किया।[१०] जब वे इंगलैण्ड गये तो वहांके एक पत्र Daily News ने उनके ईसाइयत विषयक विचारोंको जानकर लिखा कि हमें इसी बातका आश्चर्य है कि इतनी दूर तक अग्रसर होकर भी केशवचन्द्रने ईसाई मत ग्रहण क्यों नहीं किया? नाटिंघम नगरमें जब उन्हें ईसाईमत प्रचारकों द्वारा मान-पत्र दिया गया तो उसमें यह आशा व्यक्त की गई कि परमात्मा करे ईसाई मतका सम्पूर्ण सत्य आपकी समझमें आ जाय।[१०] सत्येन्द्रनाथ ठाकुरने अपने पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुरकी आत्मकथाके अंग्रेजी अनुवादकी भूमिकामें लिखा—

"Indeed his whole character was moulded by western culture and chrisian influrence. He drew much ot his spiritfal store from the New Testament and habitually spoke of Jesus christ in a manner which made his missionary friends cling to the hope of his conversion to their faith ?"

अर्थात् केशवका सम्पूर्ण चरित्र ही पाश्चात्य संस्कृति और ईसाई प्रभावमें ढला था। उनका आध्यात्मिक स्रोत न्यूटेस्टामेंट था और वे ईसाके विषयमें इस प्रकार कहते थे, जिससे उनके मिशनरी मित्रोंको यह आशा हो गई थी कि वे शीघ्र ही धर्मपरिवर्तन कर लेंगे।

जरा इस बातपर भी विचार करें कि ईसाईयतको अंगीकार करनेमें केशव किस स्थिति (Stage) तक पहुंच गये थे। फर्कुंहरने कलकत्ता विश्वविद्यालयके भूतपूर्व रजिस्ट्रार श्री के. सी. बनर्जीका यह मत उद्धृत किया है कि मरते समय केशव ईसाई थे। मैक्समूलरने अपने एक संस्मरणका उल्लेख कर लिखा है—

Once when I had asked him why he did not declare himself publicly a christian, he said in a very gurave and thoughful tone. "Suppose that thirty years hence people find out that I was a disciple of Chirst, what world he harm ? Only were I to profess myself a christian now, all my influence would be gone at once."

अर्थात् एकबार मैंने उनसे पूछा कि वे सार्वजनिक रूपसे अपनेको ईसाई घोषित क्यों नहीं कर देते? तो उन्होंने गंभीर-भावसे कहा, मान लो तीस वर्ष बाद ही ये लोग जान जायें कि मैं ईसाका शिष्य था, तो क्या हानि है? यदि मैं इस समय अपनेको ईसाई घोषित कर दूं तो मेरा सारा प्रभाव ही एकदम नष्ट हो जायगा।

लगभग ऐसा ही उल्लेख फर्कुहरने किया है। उसने लिखा है— "एक दिन श्री प्रतापचन्द्र मजूमदारकी मेरे एक मिशनरी मित्रके साथ बहुत देर तक बातें हुई। वार्तालापके प्रसंगमें मेरे मित्रने ईसाईमतके प्रति अपने दृढ विश्वासको प्रकट किया। इस पर भी मजुमदारने उसे विश्वास दिलाया कि उनका और केशवका भी बिलकुल वही मत था और कहा कि उन्होंने तथा केशवने अपने विश्वासोंको सार्वजनिक रूपमें इसलिये प्रकट नहीं किया, क्योंकि वे यह मानते हैं कि अचानक ही अपनी मान्यताओंको प्रकट कर देनेकी अपेक्षा वे धीरे धीरे ही अपने देशवासियोंको ईसाके मतके निकट ला सकेंगे।" इन साक्षियोंसे इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि केशव प्रच्छन्न रूपसे ईसाई ही थे। यद्यपि उन्होंने अपने जीवनकालमें इस तथ्यको गुप्त रक्खा, परन्तु उनके निकट सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति इस बातको भली-भांति जानते थे।

The Indian Christian Herald नामक ईसाई पत्रने केशवकी मृत्यु पर लिखा—

The Christian Church mourns the death of its greatest ally. Christians looked upon him as Gods messenger, sent to awake India to the spirit of Christ. Thanks to him, hatred of Christ died out ?

अर्थात् ईसाई समाज अपने सबसे बडे मित्रकी मृत्युका दुःख मनाता है। ईसाई लोग उसे भारतको ईसाका संदेश सुनानेवाला ईश्वर प्रेषित दूत समझते थे। उसे धन्यवाद है। क्योंकि उसके कारण ही ईसाके प्रति भारतवासियोंकी घृणा नष्ट हो गई है। जिस व्यक्तिको ईसाई अपना सबसे

× १०. केशवचन्द्र सेन.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बडा मित्र और ईसाके सिद्धान्तोंका प्रचारक मानते हों उसे यदि उनका पत्र इतनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

केशवके अधिकांश अनुयायियोंने ईसाई मत ग्रहण कर लिया । प्रतापचन्द्र मजूमदारको मॅक्समूलरका यह प्रस्ताव बहुत पसन्द आया कि ब्रह्मसमाजका ईसाई नामकरण हो जाना चाहिये और ईसाके राष्ट्रीय चर्चके रूपमें उसका संगठन करना चाहिए । उनका एक शिष्य ब्रह्मबंधु उपाध्याय नवविधानको छोडकर ईसाईयोंके ऐंगीकलचर्चका अनुयायी बन गया । एक अन्य शिष्य मणिलाल पारिखने भी ईसाई-मतको स्वीकार कर लिया । इन दोनोंका यह विश्वास था कि यदि केशव कुछ वर्ष और जीवित रह जाते तो अवश्य ही रोमन चर्चको स्वीकार कर लेते । परन्तु रोमां रोलांकी सम्मति इसके विरुद्ध है ।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि ईसाइयतकी ओर केशवका कितना प्रबल आकर्षण था । महर्षि दयानन्दने अपने सत्यार्थप्रकाशके एकादश समुल्लासमें ब्राह्मसमाजकी समीक्षा करते हुये जो निम्न उद्‌गार प्रकट किये हैं, वे केशवकी प्रवृत्तियोंको लक्ष्यमें रखकर ही लिखे गये प्रतीत होते हैं । स्वामीजीने लिखा " इन लोगोंमें स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है । ईसाइयोंके आचरण बहुतसे लिये हैं । खानपान विवाहादिके नियम भी बदल दिये हैं ... व्याख्यानोंमें ईसाई आदि अंग्रेजोंकी प्रशंसा भरपेट करते हैं । ब्रह्मादि महर्षियोंका नाम भी नहीं लेते । "

जहाँतक स्वामी दयानन्दसे इस विषयमें उनकी तुलनाका प्रश्न है, इतना ही लिख देना अलं है कि स्वामीजीका ईसाइयतसे प्रभावित होना तो दूर, वे ईसाइयोंकी कार्यप्रणाली और उनके स्वमत प्रचारके घातक कार्यक्रमसे भलीभांति परिचित थे । अपने सम्पूर्ण जीवनमें उनकी यही चेष्टा रही कि किसी प्रकार ईसाई धर्म और सभ्यताके चगुंलसे वे अपनी मातृभूमिको मुक्त करें । उन्होंने अपने अनुयायियोंको भी ईसाई धर्म प्रचारका कडाईसे मुकाबिला करनेका आदेश दिया । यह दयानन्दका ही प्रताप था कि शताब्दियोंसे भारतके कोने कोनेमें जाकर वाक्‌जाल और अन्यान्य छल छद्मपूर्ण साधनोंसे अपने मत का प्रचार करनेवाले पादरियोंके छक्के छूट गये और उन्होंने यह अनुभव किया कि अब उनका यह कार्य उतना सहल नहीं रह गया है, जितना वे अब तक समझते रहे हैं । रोमां रोलांने ठीक ही लिखा है–" दयानन्दने अकेले ही भारतके आक्रान्ताओंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी । दयानन्दने ईसाइयतसे युद्ध छेड दिया और उसकी भारी तलवारने उसके टुकडे टुकडे कर दिये । "

卐 卐 卐

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी ?

(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी ?

(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी ?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो " राज्यव्यवस्था " का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए ।
यदि आप समाजसुधारक हैं तो " समाजव्यवस्था " आपको अवश्य देखनी चाहिए ।
यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो " अर्थव्यवस्था " पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी ।
और यदि आप अधिकारी हैं तो " प्रजाव्यवस्था " पर आपको ध्यान रखना पडेगा ।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गई हैं । क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है । सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकासे ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १८) (डा. व्य. पृथक्) है । शीघ्रता कीजिए आज ही मंगवाए ।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीपावली विज्ञान

(लेखक श्री रणछोडदास 'उद्धव' रविधाम)

卐

दीपावलीसे भारतराष्ट्र राष्ट्रलक्ष्मीको कब प्रसन्न करनेमें समर्थ बन सकेगा ? इस प्रश्नका विचार इस लेखमें किया है।

श्री और लक्ष्मीकी उत्पत्ति--

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां 'लक्ष्मी'-र्निहिताधि वाचि ।"

(ऋ० १०।८१।२)

'सत्तू छननीसे छाने, त्यों पंडित बात निकलती है।
वाणी मनसे शुद्ध करे तहं मित्रता रहती है ॥'

माता लक्ष्मीका प्रादुर्भाव समुद्रसे हुआ है, आज भी हो रहा है और कल्पके अन्ततक होता रहेगा। कौनसा वह समुद्र है ? किसने कैसे इसे प्रकट किया ? इत्यादि रहस्यपूर्ण प्रश्नोंके तात्त्विक स्वरूपके समाधानके लिए ही 'समुद्र-मन्थनका आख्यान' कहा गया है। तीन सृष्टिधाराओंके भेदसे तीनों ही सृष्टिधाराओंके मूलाधार तीन महासमुद्र बने हुए हैं। (१) स्वयंभूमूला सृष्टिविद्याका आधार नभस्वान् समुद्रके मन्थनसे प्रकट हुई विश्वलक्ष्मी महाकाली कहलाई है, (२) क्रन्दसीत्रैलोक्यके सरस्वान् समुद्रके मंथनसे प्रकट हुई विश्वलक्ष्मी महासरस्वती कहलाई है और (३) रोदसी त्रैलोक्यके अर्णवसमुद्रके मन्थनसे प्रकट हुई विश्वलक्ष्मी महा-लक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हुई है। यों एक ही प्रकृति १ अव्यक्ता २ व्यक्ता-अव्यक्ता एवं ३ व्यक्ता रूपसे तीन होकर क्रमशः- १ काली २ सरस्वती और ३ लक्ष्मी के रूपसे प्रसिद्ध हो रही है। तीनोंकी मूलप्रकृतिका नाम 'महत्प्रकृति है, जो १ सत्त्व २ रज ३ तमोरूप तीन गुणोंसे युक्त है। १ सत्त्वप्रधान स्वायंभुवी महाकाली, २ रजःप्रधाना सौरीमहासरस्वती एवं ३ तमःप्रधाना पार्थिवी महा लक्ष्मी है।

जिस कूर्म (कछुए) की पीठपर समुद्रमन्थन होता है, वह द्यावापृथिवीमण्डल ही कूर्म। सूर्यके आदित्यप्राण इस त्रैलोक्यमें कूर्माकारमें परिणत हो कर ही पार्थिव त्रैलोक्य की प्रजाके सर्जक बनते हैं जैसा कि—

समुद्रमन्थनमेंसे प्रकट हुए १४ रत्नोंमेंसे एक 'महा-लक्ष्मी' है। जिसका वरण विष्णुरूपी सूर्यनारायणसे हो जाता है। लक्षण 'व्यक्त' का हुआ करता है एवं प्रकृति का व्यक्तस्वरूप सूर्यमें ही हुआ है अत एव उसकी कान्तिको 'लक्ष्मी' कहते हैं— अमृतलक्ष्मी 'श्री' है और मर्त्या-लक्ष्मी 'लक्ष्मी' है। जैसा कि निम्नलिखित मंत्रवर्णनसे प्रमाणित है—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ, अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपं, अश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥

'श्री औ लक्ष्मी ईश-पत्नियां दिन-रजनी हैं दोनों ओर।
तारागण प्रभुका प्रकाश औ द्यु-भूमि मुख प्रभु चारों ओर॥
इसी रूपमें निजको देखो साधक ! स्तुति करनेवाले।
सर्वलोककी इच्छा होगी,- विश्वरू धरनेवाले ॥'

—यजुर्वेद ३१।२२

तैत्तिरीय-आरण्यकमें- 'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' यह पाठ है। 'ह्री' का लौकिक अर्थ लज्जा है और शास्त्रीय अर्थ विनय है। 'विनय देवभाव प्रधान है और वह अमृता श्रीरूपा लक्ष्मीसे संबंधित है।

श्रीका अर्थ है- 'विद्या' एवं लक्ष्मीका अर्थ है- 'भौतिक सम्पत्ति।' विद्या ही माता शारदा' है और भूत सम्पत्ति ही माता 'लक्ष्मी' है शास्त्रानुसार श्रीसे समन्विता भूत-सम्पत्तिरूपा लक्ष्मी ही भारतीय सांस्कृतिक 'लक्ष्मी' की मौलिक स्वरूपव्याख्या है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य नामकी भगसम्पत्तियां ही 'श्री' है। यह अमृत सूर्यात्मिका है, जिसका अर्थ-स्वयंभुगर्भिता परमेष्ठिकी व्यक्त-अव्यक्ता 'महासरस्वती' है। सरस्वती ही 'श्री' है 'रस' को ही वेदभाषामें 'श्री' कहा गया है। जैसा कि—

'अथ या- एतेषां सप्तानां पुरुषाणां श्रीः, यो रसः आसीत्, तमूर्ध्वं समुदौहन्' - (शतपथ ब्राह्मण ६।१।१।४)

इत्यादिसे स्पष्ट प्रमाणित है।

दीपावलीसे सम्बन्धित एकादशी आदि तिथियां

१	मार्गशीर्ष	कृष्ण-एकादशी—		उत्पन्ना
२	,,	शुक्ल	,,	मोक्षा
१	पौष	कृष्ण	,,	सफला
२	,,	शुक्ल	,,	पुत्रदा
१	माघ	कृष्ण	,,	षट्तिला
२	,,	शुक्ल	,,	जया
१	फाल्गुन	कृष्ण	,,	विजया
२	,,	शुक्ल	,,	आमर्दकी
१	चैत्र	कृष्ण	,,	पापमोचिनी
२	,,	शुक्ल	,,	कामदा
१	वैशाख	कृष्ण	,,	वरूथिनी
२	,,	शुक्ल	,,	मोहिनी
१	ज्येष्ठ	कृष्ण	,,	अपरा
२	,,	शुक्ल	,,	निर्जला
१	आषाढ	कृष्ण	,,	योगिनी
२	आषाढ	शुक्ल-एकादशी		पद्मा
१	श्रावण	कृष्ण	,,	कामिका
२	,,	शुक्ल	,,	पुत्रदा
१	भाद्रपद	कृष्ण	,,	अजा
२	,,	शुक्ल	,,	वामना
१	आश्विन	कृष्ण	,,	इन्दिरा
२	,,	शुक्ल	,,	पापांकुशा
१	कार्तिक	कृष्ण	,,	रमा
२	,,	शुक्ल	,,	प्रबोधिनी
१	मलिम्लुच	कृष्ण	,,	कमला
२	,,	शुक्ल	,,	सुभद्रा

(मार्गशीर्ष कृष्ण से आषाढ कृष्ण तक:) संवत्सरके देवप्राणका विकासकाल। इसमें देव जाग्रत हैं और असुर सुप्त हैं।

(आषाढ शुक्ल से मलिम्लुच शुक्ल तक:) संवत्सरके असुर प्राणका प्रधानकाल। इसमें असुर जाग्रत हैं और देव सुप्त हैं।

इन २६ एकादशियोंमेंसे यहाँ आषाढ शुक्ल पक्षकी 'पद्मा' तथा कार्तिक शुक्लपक्षकी 'प्रबोधिनी' नामकी एकादशियोंकी ओर ही विशेषरूपसे ध्यान देना है।

'आपो वै पुष्करपर्णम्।'

इत्यादि वेदवचनके अनुसार पुष्करात्मक पद्मको ही 'आपः' कहा गया है। जिससे संकेतविधिके द्वारा 'आपोमय-परमेष्ठी' आजाता है। आषाढ शुक्ल एकादशीसे आरम्भ कर कार्तिक शुक्लदशमी तक वर्षाके चार महीनोंमें भूपिण्ड अपने परिभ्रमणात्मक क्रान्तिमण्डलके साथ आपोमय (पुष्करपद्मरूप) पारमेष्ठ्य समुद्रकी ओर हो जाता है। अर्थात् इन चार महीनोंमें पार्थिवजगत्में आपोमय पारमेष्ठ्य वारुणप्राणका ही प्राधान्य हो जाता है, जो कि वारुणप्राण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐन्द्रदेवप्राणोंका प्रतिद्वन्द्वी माना गया है, अतः इस कालमें देवताओंकी सुषुप्ति मान ली गई है। सचमुच सौरपार्थिव-मण्डलकी ज्योतिर्मयी लक्ष्मी इन चार महीनोंमें आरम्भकी आषाढ शुक्ल-एकादशी तिथिमें अप् वरुणालयरूपसे पद्मालयसे समन्वित बनती हुई तमोभावमें ही परिणत हो जाती है। इन्द्रकी लक्ष्मी यों मानो ऐन्द्राग्न देवताओंसे रुष्ट होकर अपने धाम-परमेष्ठीरूप पद्मालयका ही आश्रय ले लेती है। इसी वारुणपाद्म परमेष्ठीके भावको संकेतभावसे सूचित करनेके लिए ही पुराणपुरुष भगवान् व्यासने आषाढ शुक्लकी एकादशीको 'पद्मा' नाम दिया है, यही 'देवशयनी' कहलाई है।

प्राणाग्निकी वर्षाकालीन सुषुप्तिके आधार पर ही तो प्राणाचार्यों (वैद्यों) ने 'वर्षासु दोषा कुप्यन्ति -तेऽम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे।' (अष्टांगहृदय) यह सिद्धान्त व्यवस्थित किया है। वर्षाऋतुमें अग्नि मंद हो जाती है, अतएव भिषग्वरोंने आहारादिकी लघुताका ही आदेश दिया है।

वर्षाकालके देव कब जगते हैं? इसी प्रश्नका समाधान वह कार्तिकमास है, जिसके आरम्भसे ही सांस्कृतिक प्रजामें देव-जागरण-महोत्सव आरम्भ हो जाता है। देव जागरणका अर्थ है— सौरपार्थिव ऐन्द्राग्नदेव प्राणोंका अपने स्वरूपमें आना। इनका स्वरूपमें आनेका अर्थ है— लक्ष्मीका पद्मालयसे विष्णुकी प्रेरणाके द्वारा पुनः पद्मासना बनना, अर्थात् पार्थिव सौरमण्डलमें प्रबुद्ध होना। इस प्रबोधनसे ही चार महीनोंके अन्तकी कार्तिकशुक्ल एकादशी 'प्रबोधिनी' नामसे प्रसिद्ध हुई है।

देवप्राणको ही अपनी मूलप्रतिष्ठा बनानेवाली भारतीय सांस्कृतिक प्रजाके लिए इससे बडा मांगलिक पर्व दूसरा क्या होगा, जिसमें देवप्राण पुनः प्रबुद्ध होकर लोकलक्ष्मी-रूपसे इसकी जीवनधाराका अनुगामी बन जाता हो? फलस्वरूप जो मांगलिक विधि-विधान चार मासमें रुके हुए थे, वे प्रबोधिनीसे पुनः प्रारम्भ हो जाते हैं। अतः पुराणपुरुषने प्रबोधिनी एकादशीका अत्यन्त ही उल्लाससे यशोवर्णन किया है। जैसा कि निम्नलिखित कतिपय वचनोंसे प्रमाणित है—

+

तावद्गर्जति विप्रेन्द्र ! गङ्गा-भागीरथी क्षितौ।
यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ॥ १ ॥
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च।
यावत् प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिके ॥२॥
वाजपेयसहस्राणि अश्वमेधशतानि च।
एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥ ३ ॥
दुर्लभं चैव दुष्प्रापं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तदपि प्रार्थितं विप्र ! ददाति हरिबोधिनी ॥ ४ ॥

(स्कन्दपुराण एवं हरिवंश)

लक्ष्मीका जागरण ही देवजागरणका निमित्त बनता है, अतएव देवजागरणका आधार लक्ष्मीजागरण ही बना हुआ है। लक्ष्मीके जागरणका आरम्भ कार्तिक कृष्ण-त्रयोदशीसे ही हो जाता है। आगममें वरुणात्मिका अलक्ष्मीका नाम धूमावती है। वेदमें इसका नाम 'निर्ऋति' है। इस निर्ऋति-रूपा अलक्ष्मीके सहयोगी देवता 'वरुण' और 'यम' हैं और श्रीरूपा कमलाके सहयोगी देवता 'इन्द्र' और 'कुबेर' हैं। त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, प्रतिपदा और द्वितीया यह तिथिपंचक लक्ष्मी एवं अलक्ष्मीके प्राणदेवताओंका संक्रमण-काल मान लिया गया है। जहां वरुण, निर्ऋति और यमके सत्कारसे चतुर्दशी 'नरकचतुर्दशी' कहलाई है; वहां इन्द्र, लक्ष्मी और कुबेरके सत्कारसे यही चतुर्दशी 'रूपचतुर्दशी' नामसे प्रसिद्ध हो रही है।

तदनंतर अमावास्या तिथिका आगमन होता है, जो दीपावलीपर्वका प्रमुख दिवस माना गया है। अमावास्याके अनन्तर कार्तिक शुक्ल पडवा तिथिसे यम और निर्ऋतिके सहयोगी वरुणका प्रभाव तो आगे आगे शिथिल होता जाता है और कुबेर तथा लक्ष्मीके सहयोगी इन्द्रका प्रभाव आगे-आगे प्रबल बनता जाता है। अतएव यह दिवस 'इन्द्रादिन' मान लिया है। इन्द्रके सहयोगसे उसका सहयोगी शरीराग्नि भी प्रबल होने लग पडता है। वरुणके चले जानेसे दूध दही, ओषधि और वनस्पति-आदि भोग्य पदार्थोंसे संबंध रखनेवाले वर्षाजनित (वरुणप्राणजनित) विकार भी निकल जाते हैं ओर सर्वत्र इन्द्रकी शुद्धिका साम्राज्य उदित हो जाता है। उसी उपलक्षमें इस दिन 'अन्नकूटमहोत्सव' मनाया जाता है।

अमावस्याके बाद प्रतिपदा तिथिमें आर्षप्रजा इन्द्रपूजन-महोत्सव ही मनाती आ रही थी। किन्तु आगे जाकर इसीने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'गोवर्धनपूजन' का स्थान ग्रहण कर लिया है। वास्तव में इन्द्रपूजनसे भी 'गोवर्द्धन' तत्त्व परिपूर्ण बना रहता है।

इस वर्तमान कठिन समयमें महर्षि गविजातके पावन मुखकमलसे निकले हुए उस पुण्यतम उपायका स्मरण ही कर लिया जाता है। महर्षि गविजात कहते हैं।—

" अनघेया महाराज ! 'द्विजा' वर्णेषु चोत्तमाः।
'गावश्च' पुरुषव्याघ्र! गौमूल्यं परिकल्प्यताम् ॥ "

'हे राजन्! जिसप्रकार चारों वर्णोंमें वेदतत्त्ववि‍द् 'ब्राह्मण' का कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता, हे पुरुष-सिंह नहुष ! उसीप्रकार उनके समान 'गौमाता' का भी कोई मूल्याङ्कन सम्भव नहीं है।' जिसप्रकार त्रैलोक्यातीत पारमेष्ठ्य महानात्मासे युक्त ब्राह्मण लौकिक भौतिक क्रय-विक्रयात्मक मूल्याङ्कनोंकी सीमासे बाहर है, उसीप्रकार पारमेष्ठ्य वैष्णव सौम्य गौप्राणसे अभिन्न गोपशु भी अपने भीतरके आत्मभावसे भौतिक मूल्याङ्कनकी सीमाओंसे सर्वथा अलग है। मानवीय वर्णोंमें जो स्थान ब्राह्मणका है, पशव्य वर्णोंमें वही स्थान गौका है। इन दोनों विश्वप्रतिष्ठात्मक महद्भूतोंके विकल्पनसे ही धर्मविप्लव हो जाया करता है एवं उसके निरोधके लिये सगुणेश्वरको ही अवतार धारण करना पडता है। जिनके अवतारका उद्देश्य है—

'गो-ब्राह्मणहिताय च' (महाभारत, वा. रामायण बाल. २६।५) क्योंकि इन दोनोंके सुप्रतिष्ठित होते ही विश्व अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। आज हम गविजात महर्षिके उपर्युक्त उपायके महत्त्वको अर्थवादपरक ही माननेकी महती भ्रान्ति करने लग पडे हैं जब कि इसके सिवा भी महात्मा भीष्मने आगे चलकर अनेक अध्यायोंमें इस गौ-महिमाका यशोगान करते हुए भारतराष्ट्रको धन्य कृतकृत्य बनाया है। कहा है—

" गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कथञ्चन। "

एकबार अपने संपूर्ण साधनोंसे सज्जित होकर महालक्ष्मी गोमण्डलमें प्रणतभावसे उपस्थित हो गई। गौमाताएँ महालक्ष्मीके इस रूपसौन्दर्य तथा गुणसौन्दर्यको देखकर विस्मित बन गईं। और कहने लगीं कि-आप कौन हैं ? कहांसे आपने ऐसा अद्भुत रूप-गुण प्राप्त किया है ? हम सब आपके इस अलौकिक रूपको तथा सम्पत्तिमहिमाको देखकर विस्मित हैं। हम यह जानना चाहतीं हैं कि- आप वास्तवमें क्या हैं एवं यहांसे अब कहां जायेंगीं ?

महालक्ष्मीने कहना आरम्भ किया कि- में लोककान्ता (लोकप्रिया) हूं मेरा नाम 'श्री' है। हे गौमाताओ ! आपका अभ्युदय हो, यहीमेरा संक्षिप्त-परिचय है। मैंने देवके द्वेषी दैत्योंको सदाके लिए छोड दिया है और मुझसे समन्वित देव हर्षनिमग्न हैं। और सुनो गौमाताओ ! जिनमें मेरा निवास नहीं होता, वे कुछ समयके बाद सभी ओरसे विनष्ट हो जाते हैं। " पृथिवीके शरीरमूलक अर्थ, चन्द्रके मनोमूलक काम तथा सूर्यकी बृद्धिसे समन्वित धर्म " मुझ लक्ष्मीसे समन्वित होकर ही सुखी हैं। यह मेरा सर्वव्यापक प्रभाव है, गौमाताओ ! मेरी यह बडी ही कामना है कि- मैं आपमें भी निवास करूं। मेरी इस प्रार्थनासे आप भी श्रीयुक्त बन जानेका अनुग्रह करें।

गौमाताओंने लक्ष्मीके इस आकर्षक आमन्त्रणके प्रति (मानो अपने त्रैलोक्यसे अलग पारमेष्ठ्यकी तुलनामें उपेक्षणीय ही मानते हुए) यही कह डाला कि- हे देवि ! आप स्वरूपसे अस्थिर हैं, चंचल हैं और " सर्वसामान्योंके साथ आपका समागम होता रहता है। " आपके इन्हीं लौकिक साधनोंके कारण हमें आपकी कोई कामना नहीं है। कल्याण हो आपका। जहां आप स्वतंत्रतासे रमण कर सकें, वहीं पधार जाएं। हमें अपने स्वरूपके लिए जो कुछ अपेक्षित है, वह सभी हममें पहलेसे ही विद्यमान है, अतएव हमें आपसे कोई प्रयोजन नहीं है। ।

यह सुनकर लक्ष्मीदेवी पुनः कहने लगी - हे गौमाताओ ! आप भले ही अपने किसी उत्तम शरीराङ्गमें मुझे स्थान प्रदान न करें, किन्तु मुझे तो अपना कोई निम्न श्रेणीका ही अंग बतला दें, उसमें निवास करके ही मैं अपने आपको अभिनन्दिता बना लूंगी।

जब इसप्रकार अत्यन्त दीनभावसे महालक्ष्मी गौमाताकी शरणमें ही आ गई तो करुणवत्सला गौमाताओंने सम्मिलित रूपसे मूकभावसे ही आश्वासन प्रदानकर डाला कि—

हे यशस्विनी लक्ष्मीदेवी ! आप हमारे गोबर और मूत्रमें ही आजसे निवास कीजिए।

अत एव गोवर्धन-पूजन - महोत्सवका अर्थ इन्द्रपूजन-महोत्सव है। जिसमें इन्द्रपूजनसे संवंधित गोपूजन ही विहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। आगे ८३ वें अध्यायमें पितामह ब्रह्मा तथा स्वर्गके अध्यक्ष इन्द्र के संवादसे इसी तथ्यका महात्मा भीष्मने यशोगान किया है। जिसका केवल एक वचन देते हैं—

भीष्म उवाच—

एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा।
गाश्चक्रे बहुमानश्च तासु नित्यं युधिष्ठिर!
न किञ्चिद्दुर्लभं लोके गवां भक्तस्य भारत!॥

महाभारत अनुशासनपर्व अ० ८३

इन्द्रकी बात भी उस समय शिथिल ही पड जाती है, जब हम सगुणेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको स्वयं ही गोचरण-कर्ममें न केवल निरत ही सुनते हैं, किन्तु स्वयं गौमाताओं का प्रणतभावसे पूजनअर्चन करते रहनेका भी वर्णन है। इसी गौके संवंधसे तो नन्दनन्दन भगवान् गोविन्द गोपाल नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। गौ और इन्द्रप्राण एक ही हैं।

अमावस्याके बाद प्रतिपदाको पद्मपुराणके कार्तिकमहात्म्यके १२४ वें अध्यायके अनुसार गौपूजनात्मक इन्द्रपूजन-महोत्सवरूप-मार्गपाली सम्पन्न करनेके बाद रात्रिमें दैत्यपति बलिका पूजन किया जाता है, इससे आसुरप्राणमयी निर्ऋति का सम्मान हो जाता है। तदनन्तर द्यूतकर्मका विधान है। द्यूतक्रीडा (जूआ) भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे सर्वथा निन्द्यकर्म है। 'एक लगाना और दस पाना ही' आज के द्यूतका फल माना जाता है। उत्तरदायित्वसे शून्य मानव ही अनुकूलताकी दृष्टिसे इस महान् निन्द्यद्यूत (वर्तमानके सुप्रसिद्ध- 'सट्टा') पंथके अनुयायी बने हुए हैं।

फिर कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको 'यमराजपूजन-महोत्सव' मनाया जाता है, अतएव इस तिथिको 'यम-द्वितिया' भी कहते हैं। ऋग्वेदके सुप्रसिद्ध 'यमयमीसूक्त' में महर्षिने यमतत्त्वकी सुविशद वैज्ञानिक व्याख्या की है।

चित्रगुप्तके संवंधसे यह द्वितीया- 'मसीपात्रलेखिनी-पूजन द्वितीया (दावात-कलमपूजन) नामसे भी प्रसिद्ध है, जो चित्रगुप्त यमसदनके कर्मलेखक माने गये हैं। कहा है—

'यमञ्च, चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्।
अर्घ्यञ्चात्र प्रदातव्यं, यमाय, सहजद्वयैः॥'

—पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० १९५

वैदिक ज्योतिर्विज्ञान और दीपावली

कार्तिकी अमारात्रि सूर्यज्योतिके प्राकृतिक दिव्यप्राणसे वंचित है, चन्द्रज्योतिका अभाव तो स्पष्ट ही है, वर्षात्मक वारुणभोगकालसे पृथिवीकी अग्निज्योति भी गिरी हुई है। इन तीनों भूतज्योतियोंके बिना संस्कारलक्षणवाली आत्म-ज्योति तथा पार्थिवाग्निसे त्यक्त वाग्ज्योति भी मन्द है। यों पाँचों ही व्यक्त ज्योतिर्भाव एक प्रकारसे नहींसे ही हो रहे हैं। इसीलिए इस रात्रिमें कृत्रिमज्योति प्रकाशका समावेश हो गया है। सूर्यके इन्द्रप्रकाशका प्रतिनिधि आतिशबाजी (अग्निक्रीडा) है। वातावरणमें व्याप्त आसुरप्राणके निरोध के लिए ही कार्तिक मासमें 'आकाशदीप' प्रज्वलित किया जाता है।

अमावास्या तिथिमें किस समय लक्ष्मीपूजन करना चाहिए? यह एक प्रासंगिक प्रश्न है, जिसके समाधानमें अनेक विकल्प हो पडे हैं। अर्थमें आसक्त कुछ मानवोंने यह मान्यता बना रक्खी है कि— "अर्धरात्रिमें ही लक्ष्मी-पूजन करना चाहिए। क्योंकि इस समय प्रायः सभी निद्रानिमग्न हो जाते हैं, अत एव सबको सोता देख कर लक्ष्मी मुझ जागते रहनेवाले पर ही अनुग्रह कर देगी।" सबको सुलाकर जो अपनी व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि केलिए श्रीविहीन लक्ष्मीका ही संचय करना जीवनका मुख्य पुरुषार्थ मानते हैं, उनपर अवश्य जडभूतरूप, परिणाम में अलक्ष्मीरूप लक्ष्मी अनुग्रह कर देती होगी।

किन्तु जो आर्षमानव 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' 'अत्रा सखायः सख्यानि जानते-भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि' लक्षणा श्रीसे युक्ता (सरस्वतीसे युक्ता) लक्ष्मीको ही अपनी मुख्य आराध्य देवी मानते हैं, वे सांस्कृतिक पुरुष तो सूर्यसत्तामें ही लक्ष्मीपूजन करना शास्त्रीयकर्म मानते आ रहे हैं। जैसा कि—

'प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाक्रमम्।'

इत्यादिसे प्रमाणित है। श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णुरूप सूर्यकी अर्धांगिनियां हैं अतः सूर्यकी सत्तामें ही लक्ष्मीपूजन (प्रदोष समयमें) करना चाहिए।

रात्रिमेंज्योतिर्मयी लक्ष्मीका अभाव है। विकसित कमल ही इस श्रीयुक्त लक्ष्मीका आसन है। अर्ध रात्रिकी अलक्ष्मीरूप आसुरी लक्ष्मीका वाहन उल्लू माना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया है । प्रसिद्ध है कि सूर्यास्त पर पङ्कजश्री (कमलश्री) अन्तर्मुख बन जाती है । जब कमल ही मुरझा गया तो रात्रिमें कमलासना कैसे मिल सकती है ? फिर तो सरस्वती विरोधियोंकी उल्लूवाहना-आसुरी लक्ष्मी ही उपास्या बन सकती है ।

महामुनि दुर्वासाने एकबार प्रसन्न होकर इन्द्रको जय-माला दी । मदोन्मत्त इन्द्रने जयमालाको गलेसे निकालकर ऐरावत हाथी पर फेंक दी । हाथीने सूंडसे पृथिवीपर गिराकर पांवसे तोड दी । दुर्वासाके अन्तःकरणसे परोक्षरूपसे शाप निकला कि जिस राज्यलक्ष्मीके मदसे विजयमालाको ऐरावतसे तुडवाई है, वह लक्ष्मी तेरे पूर्वभारतादि लोकोंसे निकलकर अपनी जन्मभूमि समुद्रमें चली जायगी, जहां ऐरावतने भी जन्म लिया है । वैसा ही हुआ । यों इन्द्रकी मदोन्मत्ततासे पीडित ब्राह्मणकी उपास्या सरस्वतीके तिरस्कार से ही लक्ष्मी रुष्ट होकर देवत्रैलोक्यसे समुद्रमें चली गई । लक्ष्मीको लानेके लिए उपाय खोजे जाने लगे । अन्तमें इन्द्रको विष्णुकी शरणमें आना पडा । और विष्णुके अनुग्रह से ही लक्ष्मीका फिर इन्द्रपर अनुग्रह हुआ ।

श्रीयुक्त लक्ष्मीके पति हैं भगवान् विष्णु । " यज्ञो वै विष्णुः " (शतपथ ब्रा. १।१।२।१३) ' यज्ञ ही विष्णु है । ' यज्ञका मूलाधार है ' त्रयी वेदात्मक-तत्त्ववेद ' । जैसा कि " सैषा त्रयीविद्या-यज्ञः " (शतपथ ब्रा. १।१।४।३)— " ते देवा अब्रुवन् यज्ञं कृत्वा सत्यं तनवामहे " इत्यादिसे स्पष्ट है । अर्थात् कर्मरूप यज्ञका ही नाम विष्णु है । जिस देशमें त्रयीवेदवाले यज्ञका प्रतिनिधि कृष्ण-मृग स्वच्छन्द विचरण करता रहता है, वही देश वेदात्मक यज्ञ विष्णुका घर माना गया है एवं उसी यज्ञिय नैगमिक देशमें वेदमूलक वर्णाश्रमाचार सिद्ध अर्थात् प्रकृतिसिद्ध आत्मप्रतिष्ठ धर्म (आत्म-बुद्धि-मनः-शरीर समन्वयात्मक अभ्युदय और निःश्रेयस् साधक ' मानवधर्म ' नामक सनातन धर्म) पुष्पित पल्लवित हुआ है । जैसा कि कहा है ।

' यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्मान्निबोधत '
(याज्ञवल्क्य १।२)

' कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ '
(मनु० २।२३)

ऐसा देश जिसकी प्राणप्रतिष्ठा—

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः (ऋ. १०।१८०।२) के अनुसार ' मृग ' ' कृष्णमृग ' नामसे प्रसिद्ध भारत अग्नि ही है । पश्चिमके समुद्रवाले देशोंको ' वारुणदेश ' ही कहा जायेगा । पश्चिम दिशाके दिक्पाल तथा आपोलोकके लोक-पाल वैसे ही वरुण माने गए हैं, जैसे कि- पूर्वदिशाके दिक्-पाल एवं ऐन्द्राग्नज्योतिर्लोकके लोकपाल इन्द्र ही माने गए हैं । अतः पूर्व भारतवर्षको जहां लक्ष्मीका श्वशुरगृह माना जायगा, वहां वरुणरूप पश्चिमी देशोंको लक्ष्मीका पितृगृह ही कहा जायगा ।

वर्तमान भारतकी आत्मबुद्धिके प्रकाशसे शून्य, केवल मनः शरीरवाली शून्यं शून्यंकी अनात्मभावसे समन्वित दुःख भाव प्रवर्तिक ऐसी अलक्ष्मीरूप यह दीपावली कब भारतीय दृष्टिसे ' सांस्कृतिक-दीपावली ' के रूपमें परिणत होगी ? इस प्रश्नका यथार्थ समाधान आज हम भारतवासी किससे प्राप्त करें ?

इस प्रश्नके समाधानकी प्रस्तावना होगी निगमागम संस्कृतिका अनन्य स्वाध्यायव्रत । जिस प्रस्तावनाको मत-वादोंसे, सत्ताश्रयसे और स्वाध्यायविरोधी सब तन्त्रोंसे सर्वथा निरपेक्ष-तटस्थ ही रखना पडेगा । तभी भारतवर्षके सांस्कृतिक-आचार और सांस्कृतिक-आयोजनोंका ज्ञान-विज्ञानात्मक मौलिक स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा । केवल इस स्पष्टताके बलपर ही श्रीयुक्त महान् सांस्कृतिकपर्व दीपावली महोत्सवका यथार्थरूपसे आचरण करता हुआ भारतराष्ट्र राष्ट्रलक्ष्मीको प्रसन्न करनेमें समर्थ बन सकेगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक साहित्यमें समन्वयवाद

(लेखक— श्री शोभनाथ पाठक, एम. ए.)

☆

वैदिकसाहित्यम मानवमात्रके कल्याणकी भावनाका समावेश विशदताके साथ किया गया है तभी तो विश्वमें वेदनीय यह साहित्य आज भी अपनी ज्ञानगरिमामें अग्रगण्य भूलेभटकोंको मार्गदर्शन कराती है इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि हम मानवताका कल्याण करें। विश्व-बंधुत्वकी भावनासे हम आगे बढते रहें। समन्वयात्मक भावनाका एक छलकाव इन पंक्तियोंमें कितना प्रभावशील है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत्॥

अर्थात् विश्वके सभी प्राणी सुखी हो, निरोग हो तथा सभी मंगलदर्शी व सुखी हो। यह नहीं वरन् और भी कहा गया है—

" पुमान पुमांसं परिपातु विश्वतः।"

अर्थात् मानवकी परस्पर रक्षा और सहायता करना मनुष्यका परम कर्तव्य है तथा—

तत्कृणमो ब्रह्मणे गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः

हम सभी मिलकर मनुष्योंमें परस्पर सुमति और सद्-भावनाके विस्तारकी उपासना करें। विश्वबंधुत्वके प्रेरक व सत्य अहिंसाके उपासक महात्मा गांधीको यह वैदिक मंत्र बहुत ही प्रिय था।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(ईशो०)

ईश्वर द्वारा प्रदत्त मानवताके कल्याणार्थ जो भी वस्तुएं उपलब्ध कराई गई है उन सबका सभी लोग अबाधरूपसे उपयोग करे। कोई किसीके धनके प्रति अपहरणार्थ अनुचित साधनका उपयोग न करें। आज यदि विश्वभारतके इस अमृतमय उपदेश पर अमल करे तो इसमें कोई भी शक नहीं कि यह धरती स्वर्गको भी अपनी गरीमाके सम्मुख फीकी कर दे। मानवताके कल्याणार्थ आशावादकी ज्योति जगाकर पुरुषार्थकी प्रेरणा भी देनेवाली हमारी वैदिक संस्कृतिकी अमूल्य थाती युगोतक संजोने योग्य हैं। इन्हींसे हम विश्वको संवार सकते हैं देखिये यह पौरुषको जगाने-वाली अनुपम थाती :—

निराशायाः समं पापं मानवस्य न विद्यते।
तां समूलं समुत्सार्य ह्याशावादपरो भव॥
निराशावादितो मन्दा मोहावर्तेऽत्र दुस्तरे।
निमग्ना अवसीदन्ति पङ्के गोवायथावशाः॥
आशा सर्वोत्तमः ज्योतिर्निराशा परमं तमः॥

मनुष्यके लिए निराशाके समान दूसरा कोई पाप नहीं है। इसलिए पापरूपिणी निराशाको समूल हटाकर आशा-वादी बनना चाहिए। प्रगतिकी भावनासे विहीन निराशा-वादी लोग मोहके दुस्तर भंवरमें पडे हुए दलदलमें फंसी बेबस गौवोंके समान, दुख पाते हैं। आशा ही सर्वोत्तम प्रकाश है। निराशा घोर अन्धकार है। अतः मनुष्यको सतत आशावान होकर प्रयत्न करना चाहिये। कहनेका तात्पर्य को किसी कामको असंभव समझें यह भावना अपने मनमें कभी नहीं लानी चाहिए। संघर्षोंसे उलझते हुए भी सतत आगे बढने हेतु प्रयत्नशील होना चाहिये।

मानव जीवनके प्रेरक नैतिक तत्त्वोंका नाम सत्य हो। वैदिक संस्कृतिमें सत्य द्वारा ही शरीरको संवारनेका उद्-बोधन हैं।

" सत्यं वद। धर्मं चर " (तैति० उप. १।११)
" सत्यमेव जयते ना नृतम् " (मुण्ड० उप. ३।१।६)

सत्य बोलो और धर्मका आचरण करो क्योंकि सत्यकी ही विजय होती है असत्यकी नहीं। वास्तवमें यदि संसार भारतीय इस महामंत्रको अपनाए, तो उस प्रलयकारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अणुबमोंकी बिभीषिकासे बच सकता है जो आज मानवताको निगलनेके लिए सुरसाके समान मुंह फैलाए खडी हो, आजकी परिस्थितिको देखते हुए इन बातोंपर हमें गंभीरतासे सोचना है और सारे संसारको एक मंत्र पर लाना हो पर यह सब कैसे संभव है उसका यही एकमात्र उत्तर है— वैदिक संस्कृतिकी समन्वयात्मक भावनाको अपनाकर।

सर्वाङ्गीण अभ्युदय ही वैदिक साहित्यका उद्घोष है इसीलिए पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ-काम मोक्षकी महती गाथा गाई गई हैं। इस संस्कृतिकी उपमा एक स्योवस्विनी से दी जानी चाहिए जो अपने साथ अनेक नदीनालोंको लेकर गन्तव्य स्थान पर पहुंचती है। देखिये विश्वशान्ति और विश्वबंधुत्वकी उदात्त कमनीय कल्पनाका निदर्शन इस मंत्रमें कितना सजीव हो उठा है।

मित्रस्याहं चक्षुषां सर्वाणि भूतानिसमीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषां समीक्षा महे॥

यही नहीं वरन् दूसरे मंत्रमें भी समाजवादसे समन्वय की भावनाका पोषण आदर्शरूपमें प्रस्तुत किया गया है।

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
देवां भागं यथापूर्वे संजानानां मुपासते॥
(ऋग्वेद)

अर्थात् हे भगवान्! हम सब लोग समान भावसे विश्व में गति करें, श्रेष्ठ भाषण करें, हमारे हृदय भी कल्याणकारी विचारवाले हो। सबके साथ मिलें, साथ साथ रहें, एक दूसरेको मनको परखें। वैदिक साहित्यका सृजन देवताओं द्वारा हुआ है कहनेका तात्पर्य की उसका एक एक शब्द-समष्टिगत कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। यद्यपि वर्तमान परिस्थितिमें मानव भौतिकताकी ओर अधिक आकर्षित हो, आध्यात्मिक पथसे भटकता नजर आ रहा है हमारे देशमें तो यह समस्याओ भी जटिल होती जा रही है पर जो लोग पत्र पत्रिकाओंको पढते हैं वे जानते होंगे कि पाश्चात्य देश विशेषता ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी आदि जहांके लोग भारतीय वैदिक साहित्यकी ओर विशेष आकृष्ट हैं। पाश्चात्य विद्वान इस साहित्यका गुणगान करते २ नहीं अघाते इसका कारण क्या है। साररूपमें हम यही कह सकते हैं कि वो इस साहित्यकी समन्वयात्मक भावना ही युगको अपनी ओर खींचनेमें सक्षम है।

दैवत-संहिता

सम्पादक— म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

वेदोंमें पूजक ऋषियोंकी अपेक्षा पूजनीय देवोंकी प्रधानता है। क्योंकि उपासककी अपेक्षा उपास्यकी मुख्यता सर्वत्र होती है। उपासक उपास्यके गुणोंको अपने अन्दर लाकर तद्वत् बनना चाहता है। वेदोंमें भी ऋषि उपासक हैं और देवता उपास्य। ऋषिगण अल्पगुणान्वित हैं और देवता सर्वगुणान्वित। ऋषिगण देवताओंके गुण अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं और देवसदृश बनना चाहते हैं। इस प्रकार देवोंका स्थान मुख्य है।

ये देवता संस्थामें अनेक हैं, पर उनके मन्त्र चारों वेदोंमें बिखरे पडे हैं। अग्निके कुछ मन्त्र ऋग्वेदके १ मण्डलके १ सूक्तमें आए हैं, तो कुछ मन्त्र उसके २४ वें सूक्तमें आए हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि देवोंके मन्त्रोंकी भी अवस्था है।

इस संहितामें देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका मन्त्रसंग्रह है। इन्द्रके चारों वेदोंमें जितने मन्त्र आए हैं, उन सबका एक जगह संग्रह कर दिया है। इसी प्रकार अन्य देवोंका भी किया है। इससे वेदका अध्ययन करनेवालोंको बडी सुविधा होगी। उन्हें चारों वेदोंको खरीदनेकी कोई आवश्यकता नहीं। १७ पृष्ठोंमें उत्कृष्ट भूमिका युक्त आकर्षक छपाई, आकर्षक जिल्द। डबलक्राऊन ८ पेजी साइज, भूमिका १७ पृष्ठ, १०४८ पृष्ठ मूल्य ३०) (डा. व्य. पृथक्)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यज्ञके वस्त्र

(लेखक— श्री पं. वीरसेनजी वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य)

卐

यज्ञमें रेशमी वस्त्र पहनें

यज्ञ-कार्यमें विशेष प्रकारके वस्त्रोंका विशिष्ट प्रकारसे ही परिधान अर्थात् उनको धारण करना होता है। महर्षि स्वामी दयानन्दजीने संस्कारविधिमें जो प्रमाण वस्त्रके लिये उद्धृत किया है, वह निम्न प्रकार है—

'पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम्'।

अर्थात् यजमान पत्नी और यजमानके लिये ४ रेशमीवस्त्र होने चाहिये। दो–दो वस्त्र दोनोंके लिये होते हैं जिनमें एक–एक वस्त्र अधोवस्त्र और दूसरा उपवस्त्र होता है। अधोवस्त्रको कटिके नीचे पहना जाता है वह धोती कहाती है और उपवस्त्र जिसको ऊपर शरीर पर दुपट्टा या चादरके रूपमें धारण करते हैं वह होता है।

खण्डित, फाडा या फटा हुआ वस्त्र न पहनें

पुनः ये वस्त्र कैसे हों, इसके लिये कात्यायन श्रौत सूत्र ४।७।१२ में लिखा है—

क्षौमे वस्त्रे ईषद् धोते

अर्थात् यज्ञके लिये जो दो वस्त्र धारण किये जावें वे रेशम के होने चाहिये। वे फटे हुए या फाडकर बनाये गये या काट कर सीकर बनाये न हों और वे धुले होने चाहिये। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३८।१) में भी लिखा है—

अहतं वासः परिधत्ते

अर्थात् अखंडित वस्त्र धारण करे। फाडा हुआ या फटा हुआ न हो। अहतका तात्पर्य बिना फटा हुआ अखंडित सम्पूर्ण वस्त्र है। जैसे कि चादर, धोती आदि जो बनकर अपनी सम्पूर्णताके द्योतक हैं। वे भी नवीन ही हों। गोभिल गृह्य सूत्रमें " अहतेन वससेन" का अर्थ-अखंडित वसनेन ही श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमीने किया है। किसीके द्वारा पहने हुए भी न हों। किसी थान या बडे वस्त्रके खण्ड करके जो वस्त्र बनाये जाते हैं चाहे वे धोती एवं चादरके समान ही लम्बे, चौडे क्यों न हों परन्तु वे खण्ड भावको प्राप्त हो जाते हैं। अतः किसी भी प्रकारसे खण्डभावको प्राप्त हुए वस्त्र यज्ञमें उपयोगमें नहीं लेना चाहिए। अखंडित अर्थात् सम्पूर्ण–भाव, देवत्वका बोधक है और खण्ड–भाव, असुरभावका द्योतक है। यज्ञमें असुरभावका त्याग ही किया जाता है। जैसा कि " प्रत्युष्टं रक्षः " (यजु: १।७) मन्त्र में असुरभावको नष्ट करनेका संकेत है तभी – उर्वन्तरिक्षमन्वेमि (यजु. १।७।१) अर्थात् उन्नतिके विस्तृत अवकाशको यज्ञ द्वारा प्राप्त होता है।

पहना हुआ वस्त्र न पहने

अहत वस्त्रका यह भी अभिप्राय है कि धोनेके पश्चात् भी किसी प्रकारसे धारण न करके उसको अविकृत या सल रहित रखा गया हो। जैसा कि निम्न श्लोकसे ज्ञात होता है–

ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्।
अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥

अर्थात् जो नया श्वेत वस्त्र कुछ धोया जाकर उसके दोनों लम्बाईके प्रान्तोंसे धारण न किया गया हो अर्थात् कटि पर धोती रूपसे धारण न किया गया हो वह अहत वस्त्र सब पवित्र कार्योंमें उपयोगी होता है।

सिले हुए वस्त्र न पहनें

खंडित वस्त्रोंको सीकरके भी वस्त्र बनाये जाते हैं और उनसे विविध फेशनके सुन्दर वस्त्र बनते ही हैं। परन्तु यज्ञमें स प्रकारके सिले हुए वस्त्र अहत रूपसे मान्य नहीं हैं। वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुत वस्त्र ही हैं अतः यज्ञके लिये ग्राह्य नहीं है जैसा कि कहा है —

न कुर्यात् संधितं वस्त्रं देवकर्माणि भूमिप ।
न दग्धं न च वै छिन्नं पारक्यं न तु धारयेत् ॥

देवकर्म अर्थात् सन्ध्याग्निहोत्र यज्ञादि कार्योंमें सन्धिवाले वस्त्र अर्थात् सिले हुए वस्त्रोंका प्रयोग न करे । जले हुए वस्त्र, अलग किये हुए, फाडे हुए वस्त्र भी धारण न करें । दूसरोंके वस्त्र भी धारण करें । अर्थात् यज्ञ कार्यमें नवीन शुद्ध अखंडित वस्त्र ही धारण करें । इसी प्रकारके भावको अन्यत्र भी निम्न प्रकार प्रकट किया गया है—

सूचिविद्धेन वस्त्रेण आखुदष्टेन वा द्विजः ।
कटिशून्येन देवेशि, सर्वस्नानफलं हरेत् ॥

अर्थात् सुईसे सिले वस्त्र, चूहे कीडे आदिके द्वारा कटे हुए वस्त्र धारण करके धार्मिक स्नानादि कार्य जो करता है और जो नग्न होकर स्नानादि कर्म करता है उसके स्नानका सब फल नष्ट हो जाता है ।

यह दर्शानेका प्रयोजन यही है कि यज्ञमें बिना सिले, सम्पूर्ण, अखंडित वस्त्र ही धारण करने चाहिये । सिले हुए वस्त्र जैसे कुरता, कमीज, पाजामा, पेंट, कोट आदिको यज्ञमें धारण न करे और न वस्त्रोंके टुकडोंको ही धारण करे जैसा कि लोग यज्ञोंमें गलेमें छोटासा टुकडा डाल लेते हैं । खंडित एवं सिले वस्त्रोंके धारण करनेसे अपने मन पर तथा आचार-विहार पर भी प्रभाव पडता है और यह प्रभाव धार्मिक भावनाओंके विपरीत पडता है अतः इनका यज्ञोंमें पहननेका निषेध है ।

सिले हुए वस्त्रोंका धर्म—कार्यों पर कुप्रभाव

सिले वस्त्रोंका अपने धर्म कर्म एवं शुभ विचारों पर विपरीत प्रभाव पडता है ऐसा महर्षि स्वामी दयानन्दजी मानते एवं अनुभव करते हुए जोधपुर नरेशको पत्रमें लिखते "— जैसे मुसलमान और ईसाई आदिके टोपी पैजामा मुंडे जूते, कोटपतलून, टोपी आदि धारणसे आप अपने उत्तम विचारोंसे पृथक् रहे हैं " ये शब्द अत्यन्त मनन योग्य है और विचार करना चाहिये कि महर्षि दयानन्द इस प्रकारके सिले हुए वस्त्रोंके कदापि पक्षमें नहीं थे । अतः क्या हमें यज्ञोंमें ऐसे वस्त्र धारण करने योग्य है ? इससे स्पष्ट है कि यज्ञमें सिले हुए वस्त्र जैसे पाजामा, कोट, पतलून, कमीज आदि नहीं धारण करने- चाहिये । यज्ञके लिये सम्पूर्ण वस्त्र अर्थात् बिना सिला हुआ वस्त्र ही धारण कर यज्ञ कार्य करना चाहिए । यज्ञमें सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति भी तंग वस्त्र, मोजे, चूडीदार पाजामा आदि नहीं पहनें और न नैनोल टेरीलीन आदिके वस्त्र या फटे, कटे, जले और मैले वस्त्र ही धारण करें ।

बिना सिले अखंडित वस्त्रोंका लाभ

यज्ञमें यदि सम्पूर्ण वस्त्र अखंडित बिना सिला हुआ वस्त्र पहनकर भाग लेंग तो शरीर ऐसा अच्छादित नहीं हो सकेगा जैसे कि शरीर पर पटी सी बांध दी हो । उसमें पर्याप्त अवकाश रहेगा जिससे कि यज्ञकी वायुका वस्त्रके भीतर प्रवेश एवं निवास भी हो सके । यज्ञके द्वारा जो आरोग्य-प्रद वायु एवं धूम्र उत्पन्न होगा उसका यज्ञकर्ताके वस्त्रोंके मध्यसे शरीरके प्रचुर भागसे संपर्क हो सकेगा जिससे उसको विशेष लाभ होगा । यह लाभ तंग वस्त्र पहनने वालोंको नहीं हो सकता ।

टेरीलीन आदि यज्ञमें न पहनें

टेरीलीन, आदिके वस्त्र तापको सहन नहीं कर सकते और अग्निको तो बिलकुल भी सहन नहीं कर सकते । अतः यज्ञाग्निके पास ऐसे वस्त्रोंको पहनकर कदापि नहीं बैठना चाहिये । इसके अतिरिक्त नैनोल सदृश वस्त्रोंमें वायुके अवरोधनकी शक्ति होती है । छिद्रोंके अभावके कारण उन में यज्ञका वायु प्रवेश न होनेसे शरीरको यज्ञकी आरोग्यप्रद वायुका स्पर्शका लाभ प्राप्त होनेसे वंचित रहना पडता है ।

रेशमी वस्त्रोंकी यज्ञके लिये उपयोगिता

सूती वस्त्र भी अग्निको ग्रहण करने वाले हैं । यज्ञ करते समय यदि किसी भी असावधानीसे वस्त्रमें अग्नि लग जावे तो वह ईन्धनके रूपमें प्रज्वलित होने लगता है । इससे भी यज्ञकार्यमें हानि होती है । शुद्ध रेशमी वस्त्र तथा ऊनी वस्त्रोंको अग्नि लगनेका भय नहीं रहता है । यदि कोई पतंगा आदि ऐसे वस्त्रों पर पड जावे तो वह उतने ही स्थानको जला सकेगा परन्तु स्वयं वह वस्त्र अग्नि-मय होकर शेष वस्त्रको नहीं जला सकता है । अतः यज्ञके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये रेशमी वस्त्रोंका जो विधान प्राचीन ऋषि-मुनियोंने लिखा है और जिसको महर्षिने भी प्रमाण रूपमें उपस्थित किया है वह अवश्य मान्य करना चाहिये और इसमें किसी प्रकारका बहाना नहीं ढूंढना चाहिये। नकली रेशमका भी व्यवहार यज्ञमें नहीं करना चाहिये। उपासनाके संबंधमें रेशमके वस्त्रकी उपयोगिता और भी है जिसका अभी यहां उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

किन वस्त्रोंको धारण करें

यज्ञके जो अधोवस्त्र और उपवस्त्र कहे हैं उनको कैसे धारण करें यह भी प्रश्न उपस्थित होता है। सर्व प्रथम यही सोचना चाहिये कि अधोवस्त्र किसे कहते हैं? कोई कह सकते हैं कि जो कमरके नीचे पहना जाय चाहे वह नेकर, पाजामा, पतलून, तहमत, लूंगी आदि कुछ भी हो, वे सब अधोवस्त्र ही हैं। परन्तु महर्षि स्वामी दयानन्दजी अधोवस्त्रका अर्थ संस्कारविधिके समावर्त्तन प्रकरणमें -अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण यह कहते हैं। -पीताम्बर नामसे यज्ञादि कार्यके लिये एक विशेष प्रकारकी रेशमी रंगीन व सफेद धोतियां आती हैं। उससे ही तात्पर्य यहां है। अर्थात् यज्ञादि कार्यके लिये विशेष बनी हुई धोतियां जिन्हें पीताम्बरी कहते हैं, वह होनी चाहिये अथवा उसके अभावमें सूती धोती हों। इन्हींकी अधोवस्त्र संज्ञा है। इन्हें ही धारण करके यज्ञ करना चाहिये।

उपवस्त्रसे तात्पर्य ऊपर धारण करने वाले वस्त्रसे है। संभव है कि ऊपर धारण करनेवाले वस्त्रसे कोई कमीज, कोट, बुशशर्ट आदि ग्रहण कर लें परन्तु महर्षि स्वामी दयानन्दजी संस्कारविधिमें जातकर्म संस्कारमें उपवस्त्र ओढके इन शब्दोंका प्रयोग करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि उपवस्त्र ओढा जाता है। ओढा जानेवाला उपवस्त्र चादर, शाल, दुशाला आदि होते हैं और वे इतने छोटे भी नहीं होते है कि वे केवल गलेमें लटका लिये जावे जो तौलिया या अंगोछेके तुल्य लम्बे हों।

एक ही वस्त्र पहनकर कर्म न करें

दो वस्त्रोंका विधान बताता है कि नीचेका वस्त्र ऊपर न ओढा जावे। ओढनेका वस्त्र पृथक् ही रहेगा। अतः एक वस्त्रको पहन एवं उसीको ओढकर भी यज्ञ न करे। इसी लिए गोभिलाचार्यने लिखा—

+

नान्तरीयकस्यैकदेशस्य कल्पयित्वोत्तरीयताम्।

अर्थात् एक ही वस्त्रको पहनकर उसीके एक अंशको ओढकर भी क्रिया न करे। इसीको निम्न श्लोकमें भी कहा है।

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियासु पठने तथा
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजो नाचमने जपे॥

यज्ञ होमादि देवार्चन क्रियाओंमें अध्ययनादि कार्यमें, जप एवं आचमनादि कार्योंको एक वस्त्रकोही पहनकर या उसीको ऊपर भी धारण करके नहीं करना चाहिये। अतः २ वस्त्र यज्ञोंमें होने ही चाहिये।

धोतीको कैसे धारण करें

अधोवस्त्र अर्थात् पीताम्बरी या धोतीको कैसे पहना जावे? क्या तहमत या लूंगी बांध ले जैसा कि संन्यासी पहनते हैं अथवा मुसलमान नमाजके समय पहनते हैं? या एक लांगकी धोती पहनें या दो लांगकी बांधें? इस सबके समाधानके लिये शास्त्रकारोंने यह व्यवस्था रखी है:—

वस्त्रमूलं समुद्धृत्य पृष्ठवंशे षडंगुलम्।
दशायां त्र्यंगुलं त्यक्त्वा नाभिमात्रे विनिर्दिशेत्।
दशाहीनं न कर्तव्यं परिवर्तनं कारयेत्॥

अर्थात् धोतीका एक सिरा पीछे कमरमें छः अंगुल खोंसे और सामनेका दूसरा सिरा तीन अंगुल नाभिमें इस प्रकार सामने लगावे कि आगे पीछेके दोनों सिरे जो वस्त्रकी लम्बाई की समाप्तिके सूचक है वे दीखे नहीं। दोनों सिरोंको सीकरके सिराहीन भी न करे, न लपेटे ही।

सिले वस्त्र आसुरी सभ्यताके जनक हैं

फटा, फटा, असम्पूर्ण, खंडित एवं सिलावस्त्र असुरविद्ध है। वस्त्रोंको काट कर ही नाना प्रकारके फैशन, राग-रंगकी वृद्धिसे आसुर भाव एवं आसुरी सभ्यताकी वृद्धि होती है जिनसे राजसिक एवं तामसिक भावनाओंका उदय तथा सात्विक भावनाओंका लोप होता है। ये ही रागजन्य प्रवृत्तियां शारीरिक एवं मानसिक रोगोंकी जनक है और जन-समाजको भी दूषित एवं प्रभावित करती हैं। यज्ञमें ये भाव त्याज्य ही हैं।

यज्ञमें अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण करे

वस्त्रोंके बारेमें महर्षि दयानन्दजीने पूर्वाचार्योंका प्रमाण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देकर रेशमी वस्त्रोंका यज्ञमें विधान प्रदर्शित किया है। महर्षिने यजुर्वेद भाष्यमें अ. १९ के ८९ वें मन्त्रमें भी रेशमी व ऊनी वस्त्र शाल आदिका विधान किया है। उत्तमसे उत्तम वस्त्रोंमें रेशमी और शालोंकी गणना होती है। अतः यज्ञ में इन्हींका उपयोग करना चाहिये। ईश्वरस्तुति प्रार्थनो-पासनाके मन्त्रोंके भाष्यमें महर्षि स्वामी दयानन्दजी संस्कार विधिमें लिखते हैं "परमात्माकी उपासना अपनी सकल उत्तम सामग्रीको उसको आज्ञापालनमें समर्पित करके भक्ति विशेष करें" "परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये सब सामर्थ्यसे विशेष भक्ति करें" इन वाक्योंमें भी उपासनाके लिये अपनी सकल उत्तम सामग्री और सब सामर्थ्यका उल्लेख प्रकट करता है कि यज्ञमें हमें सभी वस्त्र, पात्र, सामग्री आदि उत्तमोत्तम ही ग्रहण करनी चाहिये-सामान्य नहीं-अथवा अपने सामर्थ्यसे हीन कोटिके भी नहीं रखने चाहिये।

संस्कारविधिमें विविध संस्कारोंके अवसर पर भी जो वस्त्र धारण करनेका लिखा है उनसे भी अतिश्रेष्ठ, उत्तम वस्त्र ही यज्ञमें धारण करना चाहिये यह ज्ञात होता है। जैसा कि—

(१) "शुद्धवस्त्र" – (नामकरण, वेदारंभ एवं विवाह संस्कारमें)

(२) "उत्तमवस्त्र" – (चूडा कर्म एवं उपनयन संस्कारमें)

(३) अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण – (समावर्तन संस्कारमें)

(४) "सुन्दर वस्त्र" – (निष्क्रमण संस्कारमें)

त्याज्यवस्त्र

यज्ञोंमें कैसे वस्त्र नहीं होना चाहिये इस बारेमें यद्यपि ऊपरके विवेचनसे बहुत कुछ प्रकट हो जाता है तथापि इस विषयमें और भी कुछ ज्ञातव्य विशेष है ही। निम्न प्रकारके वस्त्र धर्मकार्योंमें वर्जित हैं :—

कटिवस्त्रं धृतं तु यद्वस्त्रं पुरीषा यन वा कृतः।
मूत्रमैथुनकृद्वस्त्रं धर्मकार्ये विवर्जयेत् ॥

अर्थात् जिस वस्त्रको एक बार अधोवस्त्रके रूपमें धारण किया हो उसको धोकर ही पुनः पहनना चाहिये। जिस वस्त्रको पहन कर मलमूत्रका विसर्जन किया हो उस वस्त्रको भी नहीं धारण करना चाहिये-धोनेके बाद ही उपयोगमें लिया जा सकता है। इसी प्रकार जिस वस्त्रको धारण करके मैथुन कर्म किया हो उसका धर्मकार्यमें उपयोग नहीं लेना चाहिये।

आज सार्वजनिक यज्ञोंमें उपवस्त्रके रूपमें गलेमें एक पीलीसी चिन्दी स्कार्फ, पट्टी या टाईसदृश वस्त्र खण्ड यज्ञके अवसर पर आहुति-दाताओंके गलेमें डाल देते हैं और फिर उसीको उतारकर दूसरेके गलेमें भी डाल देते हैं, पुनः उनसे भी उतारकर औरोंको क्रमशः पहना देते हैं। यह प्रथा ठीक नहीं है। क्या इसी प्रकार यज्ञोपवीत भी एकका दूसरेको पहनाया जा सकता है? शास्त्रकारोंने तो-"वस्त्रमन्यधृतं चैव सदैव परिवर्जयेत्" – अर्थात् दूसरेका धारण किया हुआ वस्त्र यज्ञमें कभी भी धारण नहीं करे यह आदेश दिया है। अतः यह प्रथा समाप्त करनी चाहिये तथा यज्ञके लिये उपवस्त्र जो कि पूर्ण चादर या शालके तुल्य हो, उसे ही धारण करना चाहिये। वह नवीन वस्त्र हो या अपने ही उपयोगमें पूर्व लिया हुआ हो।

वस्त्रोंके रंगका शरीर पर प्रभाव

रंगोंका प्रभाव अपने शरीर पर होता है। अतः यज्ञमें जिन वस्त्रोंको धारण किया जाता है उनका भी हमारे शरीर पर प्रभाव पडता है। यज्ञमें ध्यान, शान्ति, सबके कल्याण आदिकी कामना, सात्त्विक भावोंका उदय इत्यादिकी प्रधानता प्रायः रहती है और दैनिक यज्ञादिकर्मोंमें भी एक ही प्रकार की भावना रहती है। अतः दैनिक सन्ध्योपासन यज्ञादि अनु-ष्ठान जपादिमें इन्हीं भावनानुकूल वस्त्रोंको धारण करना चाहिये। इन पूर्वोक्त भावनाके अनुकूल श्वेतवर्णके वस्त्र हैं जो शुद्धता, शान्ति, सात्त्विकता, ध्यान एवं सर्व मांगल्यकी भावना के उद्बोधक हैं। वर्णसे अपने अन्दर भी वर्णकी उत्पत्ति होती है। पीत रंग और केसरिया रंग भी उपयोगी हैं। उनसे सत्त्व एवं रज मिश्रित प्रभाव उत्पन्न होता है। परन्तु जिनसे रज तम मिश्रित या केवल तमोभाव उत्पन्न होते है ऐसे रंगके वस्त्रोंको पहनकर उपासना करना निषिद्ध है। जैसा कि कहा है—

न रक्तं मलिनं चैव न नीलं च प्रशस्यते।

अर्थात् लाल, नीला और मैला वस्त्र या मैलखोर वस्त्र यज्ञमें निषिद्ध मान जाते हैं। ऐसे वस्त्रोंको पहनकर शुभ दैनिक धर्म कार्य करनेसे मनपर प्रभाव अनुकूल नहीं पडता है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मलिन, तामसिक भावोंका उदय होता है अतः साधना विफल होती है जैसा कि कहा है—

नीली रक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म कुरुते द्विजः ।
स्नानं दानं जपो होमं तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥
(प्राणतोषिणी)

अर्थात् नीला या लाल वस्त्र पहन कर जो कर्म स्नान, दान, जप होम आदिको द्विज करते हैं वह सब निष्फल हो जाता है। चूंकि संन्यासी होमादि सबको त्याग देता है अतः वह रक्त वर्णके ही एक भेद विशेष काषाय वर्णके वस्त्रोंको धारण कर इन कर्मोंके प्रति अपनी अकर्तव्यताको विज्ञापित करता है जिससे यज्ञादि कर्मोंके प्रति उसकी असमर्थता एवं निष्फलताका ज्ञान अन्योंको भी होता रहे और वे उसे यज्ञादि कर्म करानेमें लिप्त न कर सकें। परन्तु काम्य कर्मोंमें कामनानुकूल दैनिक कार्यमें निषिद्ध वर्णके वस्त्रोंका भी उपयोग करना होता है। अतः जहां ऊपर लाल वस्त्रका सात्त्विकता शान्ति आदिकी दृष्टिसे निषेध प्रदर्शित किया था वहां अत्र राजसिक एवं तामसिक भावनाके काम्य कर्मोंमें उसकी उपयोगिता "वश्ये रक्तं" के द्वारा प्रकट की गई है।

वेदमें वर्ण विज्ञान

रंगीन परिधानका शरीरकी प्रकृति पर प्रभाव पडता है, इसका संकेत यजुर्वेदके अध्याय २४ में विशद रूपसे वर्णित है। वहां भिन्न प्रकारके रंगोंके पशुपक्षियोंके रंगोंके कारण ही उनमें भिन्न तत्त्वों एवं गुणोंकी प्रधानताका प्रतिपादन किया गया है। जिससे ज्ञात है कि उनमें तत्तत् तत्त्वोंकी एवं गुणोंकी प्रधानता उनके विशिष्ट वर्णोंके ही कारण है। यथा- (यजु. अ. श २४ मं. १ में)

(१) कृष्णग्रीवा आग्नेयः = काली ग्रीवावाले पशु अग्नि तत्त्व प्रधान है।

(२) सोमापौषणः श्यामोनाश्याम् = काले नाभिवालोंमें सोम और पूषा तत्त्व प्रधान हैं।

(३) सौर्यश्यामौ श्वेताश्च कृष्णाश्च पार्श्वयो := श्वेत और काली पसलियों सदृश धारीवालोंमें सूर्य और यम तत्त्व प्रधान है।

(४) वायव्यः श्वेतः = श्वेत रंगके वायुतत्त्व प्रधान पशु हैं।

मन्त्र २ में—

(५) रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या := लाल या कपिल वर्ण वाले पशु सोमशक्तिसे सम्पन्न है।

(६) बभ्रुरुणबभ्रु शुकबभ्रुस्ते वारुणा := भूरे या लाल मिश्रित भूरे हरितवर्णके साथ भूरे वर्णवाले वरुण तत्त्व प्रधान है।

मन्त्र १९ में—

(७) श्वेता : सौर्याः – श्वेत सूर्यतत्त्व वाले हैं।

अर्थात् विविध वर्णोंके परिधानोंका अपने शरीर, प्रकृति, मन, बुद्धि, विविध प्रकारकी भावना एवं प्रवृत्तियों पर प्रभाव पडता है। जब वर्ण विशेषका प्रभाव पडता है तो उस वर्णके विपरीत या प्रतिकूल प्रभावकी उत्पत्तिका अभाव या शमन भी होता है यह भी परिणामतः ज्ञात हो जाता है। जिस प्रकारसे बाह्य वर्णके आवरणका प्रभाव अपने मन पर पडा है, ठीक उसी प्रकार हमारी आन्तरिक अग्नि, तेज एवं मनकी वृत्तियां जब हमारे वर्णात्मक परिधानसे विश्वके मानसिक क्षेत्रमें प्रवेश करती हैं तो उसका भी प्रभाव बाह्य जगत् या अन्य व्यक्तियों पर पडता है। वर्ण (रंग) का सम्बन्ध रूपसे है। रूपका सम्बन्ध अग्निसे है। इस प्रकार वर्णके रूपके माध्यमसे एक अग्निका दूसरी अग्निमें वर्ण-रंजन रूपसे प्रभाव होता है। वर्ण–शब्दमें भी वर्ण–रंग है। उसको अपनेमेंसे प्रसारित करनेके लिये विशेष रूपसे रंजित करनेके लिये शरीर पर विशिष्ट वर्णके वस्त्र धारण किये जाते हैं उनका भी प्रभाव उन पर होता है। अतः यज्ञमें वस्त्रोंके वर्णका भी अपना पृथक् महत्त्व है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुमायुंकी सहृदयता – एक कोरी कल्पना

(लेखक— श्री प्रा. ज. रा. कस्तूरे)

☆

[भारतीयतासे पतित भारतीय इतिहासकारोंने भारतीय इतिहासको यथेच्छ विकृत किया। भारतीय इतिहासको विकृत करनेका महान् अपराध उन्होंने किया। उन्होंने एक निर्घृण, व्यभिचारी, राजपूतोंकी बहू बेटियोंकी अस्मतसे खुलकर खेलनेवाले अकबरको "महान् सम्राट्" की उपाधिसे विभूषित किया और अपनी आजादीके लिए जंगलोंकी खाक छाननेवाले, वीर महाराणा प्रतापको राष्ट्रद्रोही बताया। अपनी कट्टर धर्मान्धताके नशेमें हजारों हिन्दुओंका गला काटनेवाले महाकपटी औरंगजेबको इन महापतित इतिहासकारोंने सिर आंखों पर चढाया और "पहाडी चूहा" कह कर छत्रपति शिवाजीकी खिल्ली उडाई। इन्हीं इतिहासकारोंने हुमायुंकी सहृदयता और निष्पक्षपातित्वको खूब सहारा और महारानी कर्मवतीके द्वारा हुमायुंको भेजी गई राखीके बदलेमें हुमायुं द्वारा प्रदर्शित भ्रातृप्रेमको रंगनेमें अनेक पृष्ठ बिगाडे। पर क्या हुमायुंका यह भ्रातृप्रेम निश्छल और निष्कपट था? इस प्रश्नका उत्तर आपको इस लेखमें मिल सकेगा? – सम्पादक]

अपनी पूर्वग्रह दूषित वृत्ति और लकीरके फकीर बननेकी बुद्धिका शिकार हुआ कोई व्यक्ति जब किसी अन्य व्यक्तिका मूल्यांकन करता है, तब वह उस व्यक्तिको यांतो निष्कारण ही महान् बना देता है, या फिर लघु बना देता है या फिर उसे उपेक्षाकी कोटिमें रख देता है। ऐसी स्थितिमें कुछ घटनायें विकृत करके उन्हें उनकी वस्तुस्थितिसे विपरीत करके सामने प्रस्तुत किया जाता है। हुमायुं और उसे चित्तौडकी रानी कर्मवतीके द्वारा भेजी गई राखीकी घटना भी इसी तरहकी मनोवृत्तिकी निदर्शक है।

१५२६ सन्में बाबरने सुलतान लोदीका पराभव करके दिल्ली और उसके आसपासके प्रदेश पर अपना शासन स्थापित किया। उसी वर्ष बहादुरशाह गुजरातकी गद्दी पर बैठा। पहलेके सुलतान अर्थात् बहादुरशाहके बापको मेवाडके राणा सांगाने कई बार करारी हार दी थी। अपने बापकी हारका कांटा बहादुरशाहके मनमें चुभ रहा था। अपने बापकी हारका बदला लेनेके लिए वह बेताब हो रहा था। पर राणा सांगाके पराक्रमके डरसे वह सुयोग्य अवसरकी ताकमें अपने क्रोधको चुपचाप पिये जा रहा था। ई. स. १५२८ में कनवाहोंकी लडाईमें राणा सांगाका पराभव हुआ और १५३१ में राणा सांगा दिवंगत हो गए। १५३० में दूसरी तरफ दिल्लीमें भी बाबरकी मौत हो जानेसे उसका लडका हुमायुं गद्दीनशीन हुआ। उस समय मेवाडकी गद्दी पर बैठा हुआ राणा सांगाका लडका विक्रम सूर्यसे उत्पन्न शनिश्चरके समान ही था। अपने विलासी स्वभाव और उद्धतपनके कारण उसने अपने सभी सामंत, सरदार और सैनिकोंको नाखुश कर दिया। उसके अन्दर उसके पिताके धीरोदात्त गुणोंका सर्वथा अभाव था। दूसरी तरफ हुमायुंमें भी बाबरके समान शौर्य, धैर्य आदि गुण नहीं थे। मेवाडका कार्यभार विक्रमकी माता अर्थात् राणा सांगाकी पत्नी संभाले हुए थीं। सन् १५३१ में ऐसी परिस्थिति होनेके कारण बहादुरशाहको सुयोग्य अवसर मिल गया और उसने १५३२ सन् में मेवाड पर पहला हमला किया।

इस हमलेका मुकाबला करनेके लिए रानी कर्मवतीने राजपूतोंको संगठित करनेके बजाय दिल्लीसे हुमायुं की मदद लेना ज्यादा पसन्द किया। तदनुसार उसने पद्मसिंह नामका अपना एक खास दूत राखी देकर दिल्ली भेजा। उसने हुमायुंको अपना "राखीबंध भाई" बनाया। उसकी प्रार्थना मान्य करके हुमायुं अपनी सेना लेकर दिल्लीसे चल पडा और जनवरी १५३३ के बीचमें वह ग्वालियर तक जा पहुंचा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुमायुंके इस कामको देखकर बहादुरशाह बडी चिन्तामें पड गया, क्योंकि उसके पास इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह एक ही समयमें दो दिशाओंमें टक्कर ले सके। दिल्ली और मेवाड दोनोंसे युद्ध करनेका मतलब था अपने हाथोंसे अपनी कब्र खोदना। इसकारण बहादुरशाह विचारमें पड गया, पर उसके वजीर सद्रखानने उसे एक उपाय सुझाया और बहादुरशाहने उसी समय उस उपाय पर अमल किया। उसने हुमायुंके पास एक पत्र भेजा और हुमायुंसे प्रार्थना की "आजकल मैं एक काफिरसे युद्ध करनेमें लगा हुआ हूं। ऐसे समय आप जैसे दीनदार मुसलमानको मेरी ही सहायता करनी चाहिए। पर यदि वह आपके लिए संभव न हो तो जबतक मैं चित्तौडके युद्धसे मुक्त न हो जाऊं, तब तक आप मुझ पर हमला न करें। इस्लामी धर्मशास्त्रका इतना आदर तो आप अवश्य करें।" वजीरकी सलाहसे भेजे गए इस पत्रने हुमायुंके चित्तको डांवाडोल कर दिया। उसके सामने यही प्रश्न था कि "एक परधर्मीय बहिनकी रक्षा करना श्रेष्ठतर है या एक स्वधर्मीय शत्रुकी प्रार्थना स्वीकार करना"। आखिरकार स्वधर्माभिमानने भ्रातृत्व पर विजय पाई और हुमायुंने बहादुरशाहको चित्तौडयुद्धसे मुक्त होने तक प्रतीक्षा करनेका निर्णय किया। कुछ भी न करते हुए हुमायुंने ग्वालियरमें १॥ महिने बिताये और फरवरी १५३३ के अन्तमें वह दिल्ली लौट गया। इधर कर्मवतीने दिल्लीसे आनेवाली मददकी बडी आतुरतासे प्रतीक्षा की। पर मदद आनेके जब कोई लक्षण दिखाई नहीं दिए तब कुछ प्रदेश और बहुत सारा धन बहादुरशाहको देकर कर्मवतीने बहादुरशाहका यह पहला हमला वापस किया (मार्च १५३३)

हुमायुंके इस विश्वासघातके लिए कई इतिहासकारोंने उसे दोषी ठहराया है। अनेकोंका ऐसा भी मत था कि आगे चलकर उसके लडके अकबरने राजपूतोंकी अनमोल मददसे एक बडा भारी साम्राज्य स्थापित किया उसी सिद्धान्तका सहारा यदि हुमायुंने इस समय लिया होता तो उसे शेरशाहके मुकाबले हार खाकर भारतसे भागकर जानेकी मुसीबत न उठानी पडती। कई इतिहासकारोंने इसे हुमायुं सबसे बडी गलती बताई है।' मुगल रूल इन इण्डिया' में ग्रंथकार लिखता है- जब तक चित्तोड पर घेरा बन्दी चलती रही, तब तक हुमायुंने अपनी उंगली भी बहादुरशाहके विरुद्ध नहीं उठाई ... निस्सन्देह उसकी यह नीति गलत थी।[1] एक दूसरे सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव लिखते हैं जिस समय बहादुरशाह राणासे उलझा हुआ था, उस समय बहादुरशाह पर आक्रमण करना हुमायुंने पाप समझा। यह हुमायुंकी एक बडी भारी गलती थी।[2] सुप्रसिद्ध इतिहासकार मजुमदार भी इस विषयकी चर्चा करते हुए स्पष्ट रूपसे अपना मत लिखते हैं- जब तक बहादुरशाहने राजपूतोंको मिट्टीमें नहीं मिला दिया, तब तक हुमायुं प्रतीक्षा करता रहा। ऐसा करके हुमायुंने बडी भारी गल्ती की। इस प्रकार हुमायुंने अपनी भलाईके लिए राजपूतोंकी सहानुभूति और मदद प्राप्त करनेका एक स्वर्णावसर खो दिया।[3] हुमायुंके चरित्रलेखक डॉ. बनर्जी 'बादशाह हुमायुं' नामक अपने एक अंग्रेजी ग्रंथमें लिखते हैं- 'हुमायुंने यदि राजपूतोंको समयपर मदद पहुंचा दी होती तो राजपूत उसके सदाके लिए मित्र बन गए होते।'

बहादुरशाहने प्रदेश और धन लेकर युद्ध बंद तो कर दिया पर चित्तौडके किले पर अधिकार करनेकी उसकी आसुरी महत्वाकांक्षा उसे शान्त नहीं बैठने दे रही थी। इधर विक्रमकी ऐय्याशी फिर शुरु हो गई। उससे फायदा उठाकर

---

(1) So long as the seize of Chittor continued, Humayun did not raise his fingure against Bahadurshah ... undoubtedly his policy was wrong (Mughal Rule in india. p. p. 21)

(2) Humayun Thought it sinful to attack Bahadurshah when he was fighting with Rana. This was Humayun's great blunder (Mughal Empire- p. p. 51)

(3) (Humayun) waited while the latter (Bahadurshah) vanquished the Rajputs ... Humayun committed a fatal blunder. He lost a golden opportunity of winning for his own cause, their sympathy and support. (An Advanced History of India- p. 434)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१५३५ की जनवरीमें बहादुरशाहने फिर दूसरी बार चढाई की। इस बार पूर्वानुभवको ध्यानमें रखकर रानी कर्मवतीने हुमायुंसे मदद नहीं मांगी, अपितु चित्तौडकी रक्षाके लिए अनेक राजपूत सामंतों, सरदारों और सैनिकोंको संगठित किया। सब लोग संगठित हो गए। विक्रमको किलेसे निकाल कर अज्ञातस्थान पर ले जाया गया। चित्तौड-रक्षा की सब जवाबदारी बाघसिंह नामक सरदारको सौंपी गई। उसी समय किन्हीं राजकीय कारणोंसे हुमायुं और बहादुरशाहके बीच मनमुटाव हो गया और अपने शत्रुको नष्ट करनेके लिए हुमायूं सेना लेकर सारंगपुर तक पहुंच भी गया था। बहादुरशाहके आगे फिर वही संकट आ खडा हुआ और उसने फिर वही तुरफी चाल चली, लिहाजा वह संकट फिर दूर हो गया। इस द्वितीय आक्रमणका वर्णन करते हुए "मेवाड और मुगल "के लेखक श्री गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं " ८ नवम्बर १५३४ के दिन हुमायूं बहादुरशाहसे लडनेके लिए आगरेसे चला। तब बहादुरशाहने हुमायुंसे प्रार्थना की कि "चूंकि वह (बहादुरशाह) एक काफिरके साथ युद्ध करने रूप पवित्र कार्यमें लगा हुआ है, अत: फिलहाल हुमायुं उस पर आक्रमण न करे। हुमायुं बहादुरशाहके इस शरीयतकी पुकारसे बडा प्रभावित हुआ और उसने बहादुरशाहकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। "[४] एक दूसरा प्रसिद्ध लेखक स्टेन्ले लेनपूल अपने ' मध्ययुगीन भारतका इतिहास " नामक ग्रंथमें लिखता है- " हुमायुंने बहादुरशाहको चित्तौडके संग्राममें मशगूल देखा, पर बजाय इसके कि हुमायुं उसी दम बहादुरशाह पर आक्रमण करके उसका राज्य छीन लेता और इसप्रकार राजपूतोंकी सहानुभूति भी प्राप्त कर लेता, चुपचाप लडाईके खत्म होने तक देखता और प्रतीक्षा करता रहा।[५]

उस समयकी राजकीय परिस्थितिकी तरफ नजर न डालकर हुमायुंने आत्मघातक तटस्थताकी नीति अपनाई। बहादुरशाहके तोपखानेके आगे राजपूत सेना टिक न पाई। अन्तिम उपाय समझकर रानी कर्मवतीने हजारों स्त्रियोंके साथ जौहरका व्रत अपनाया। राजपूत सैनिक केसरिया बाना पहनकर जान हथेली पर रखकर रणभूमिमें कूद पडे, पर राजपूतोंके पराक्रमका कुछ भी फायदा नहीं हुआ। चित्तौडके किले पर ६ मार्च १५३५ को बहादुरशाहका अधिकार हो गया, उसकी आसुरी महत्वाकांक्षा पूर्ण हो गई। उसने किलेमें प्रवेश किया, पर वहां उसे शव, हड्डी और राखके सिवाय कुछ न मिला। चित्तौडके नाशका समाचार सुनते ही हुमायुंने अपनी तटस्थता छोड दी। बहादुरशाहके साथ धार्मिक कारणोंसे रोकी गई लडाई उसने शुरु कर दी। अपनी पूरी जिन्दगीमें हुमायुं सिर्फ इसी वक्त चपलतासे लडा। उसने अपनी सेना वेगसे आगे बढाई और हर जगह बहादुरशाहको धूल चटाई। हारकर बहादुरशाह गोवाकी तरफ भाग गया और वहीं उसकी मौत हो गई। बहादुरशाह और हुमायुंकी लडाईके दरम्यान बचे खुचे राजपूतोंने फिर चित्तौड पर अधिकार किया। उसके बाद ८ जून १५३५ के दिन राजपूतोंके पूर्णतया नष्ट हो जानेके बाद हुमायुं चित्तौड पहुंचा, पर उस समय जा कर क्या फायदा होना था ?

राजपूतोंके बारेमें हुमायुंकी नीति इस प्रकार थी। फिर भी आज सभी स्कूलोंकी किताबोंमें हुमायूंको उदार, मानवतावादी और सहिष्णु बताकर उसका गुण-गान किया जाता है। पर उसने राखीकी लाज कहां रखी और अपना भ्रातृत्व कब और कहां प्रकट किया ?

\+ + +

---

(4) On 8 th November 1534 Humayun left Agra to fight Bahadurshah. Bahadurshah now requested the emperor not to attack him while he was engaged in a holy war against the infidal. Humayun was impressed by the appeal to the shariat. He decided to accept the request of Bahadurshah– (page. 77).

(5) Humayun found Bahadur busily engaged in the seize of chitor. Instead of attacking at once and ...... winning to his side ... the friendship of the Rajput chiefs he stood by till the quarrel was foughtout. (page 224)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

श्री ... प्रसाद ...
... निवास ...
ललितपुर, ... (नेपाल)

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

(लेखक— श्री वेदव्रत शास्त्री)

卐

मक्केकी रोटी

महाराजका भोजन उनके क्षत्रिय-शिष्योंके यहांसे आया करता था। एक दिन स्वामीजी चबूतरे पर विराजमान थे। अभीतक उनके लिए भोजन न आया था। एक कृषक मक्के की मोटी मोटी रोटियां लिये हुए उधरसे जा रहा था। जब वह चबूतरेके पास पहुंचा तो उसके जीमें रोटियोंको महाराजकी सेवामें समर्पित करने भी इच्छा हुई। उसने नम्रता पूर्वक प्रणाम करके निवेदन किया कि महाराज आज तो मेरी सूखी मधूकरी पानेकी कृपा करें। स्वामीजीने कृपा पूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार की और उसके भोजनको बडी प्रसन्नताके साथ खाया। कृषकका हृदय गद्‌गद हो गया और उसके नेत्र प्रेम अश्रुसे पूर्ण हो गये।

नाईकी रोटी नहीं, गेहूंकी है।

यह उक्त घटनासे प्रथमकी घटना है कि एक दिन एक नाई अपने घरसे स्वामीजीके लिये भोजन बनवाकर लाया और उनसे प्रार्थना की कि आज तो मेरी भिक्षा स्वीकार कीजिये। महाराजने उसे सहर्ष स्वीकार किया। उपस्थित लोगोंने कहा भी कि महाराज यह तो नाईकी रोटी हैं, परन्तु उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि यह नाईकी रोटी नहीं गेहूंकी रोटी है और बडे प्रेमसे उन्हें खाया।

षड्दर्शन समन्वय

प्रश्न—सांख्य-शास्त्रके कर्ताको लोग अनीश्वरवादी कहते हें और उसमें "ईश्वरासिद्धेः" यह सूत्र भी है, क्या यह ठीक है?

उत्तर— सांख्यकर्ता अनीश्वरवादी नहीं हें। लोग ऋषि कृत टीकाओंको छोडकर और भ्रष्ट लोगोंकी टीकाओंको पढकर ऐसा कहने लगे हैं। भागुरी ऋषिकी टीकाको पढो तुम्हारा सन्देह दूर हो जायगा। "ईश्वरासिद्धे" सूत्र पूर्वपक्ष का है। आगे उसका उत्तर दिया गया है। यदि सांख्यकर्ता नास्तिक होता तो वह पुनर्जन्म, वेद, परलोक और आत्माको क्यों मानता? कोई दर्शन दूसरे दर्शनका विरोध नहीं करते छः कारणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है—न्याय दर्शन १. परमाणुओंका; २ मीमांसा दर्शन कर्मका; ३ सांख्य दर्शन तत्त्वोंके मेलका; ४ योग दर्शन ज्ञान विचारका ५ वैशेषिक कालका; और ६ वेदान्त परमात्माका वर्णन करता है।

लडकियोंका दान करते देखकर स्वामीजीको भोजनका भी ध्यान न रहा

एक दिन पर्वका दिन था। गङ्गाके पार एक मेला था। उस दिन महाराजने संस्कृतमें व्याख्यान दिया था जिसे सुन कर बंगाली सज्जन मुग्ध हो गये थे। सायंकालके समय महाराज घूमते हुए मेलेमें जा पहुंचे तो उन्होंने देखा कि लोग अपनी लडकियोंको पण्डोंको दान कर रहे हैं। महाराजका एक भक्त था जिसका नाम नन्दन ओझा था वही उनके लिये भोजन लाया करता था। उस दिन भोजन लाया, परन्तु महाराज डेरेपर न मिले। बहुत देरतक प्रतीक्षा करके भोजन रखकर वह अपने घर चला गया। प्रातःकाल जब आया तो देखा कि भोजन ज्योंका त्यों रखा है। कारण पूछने पर महाराजने कहा लोगोंका लडकियोंका दान देना और पण्डोंकी धूर्तता देखकर हमें इतनी वेदना हुई कि भोजनका ध्यान भी न आया।

कन्यादान

"कन्यादान" शब्दका समास विच्छेद दो प्रकारसे किया जा सकता है, पहला "कन्याके लिये दान" दूसरा कन्याका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दान " है। स्वामीजीको पहला समास विच्छेद ही अभीष्ट है। बालक और बालिका दोनों विद्यार्थी जीवन बिताकर स्नातक होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं। अतः कन्याका बाप अपनी लडकीके गृहस्थ-जीवनमें सहायता प्रदान करनेके लिये कुछ पदार्थ देता है। इसीको "कन्यादान" कहा गया। परन्तु दूसरे अर्थसे अनर्थ हो गया।

शराब और उसके दाम

(मूर्तिपूजाके खण्डन करनेपर)

एक दिन स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे कि कुछ धूर्तोंने एक तलवार और एक कसाईको भेजा। उन्होंने जाकर शोरगुल मचाकर स्वामीजीसे कहना आरम्भ किया कि हमारे शराब और मांसका दाम तो दे दीजिये। स्वामीजीने हंसकर कहा कि बहुत अच्छा। व्याख्यानके पश्चात तुम्हारा भी हिसाब कर दूंगा। व्याख्यानके पश्चात स्वामीजीने एक हाथसे एकका और दूसरेसे दूसरेका सिर पकडकर कहा कि बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम है। जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी उनके सिरोंको आपसमें टकरा कर उनका कचूमर निकाल देंगे तो उन्होंने हाथ जोडकर क्षमा मांगी और कहा कि हमें तो अमुक पुरुषोंने सिखाकर भेजा था। उन्हे स्वामीजीने तुरन्त क्षमाकर दिया और छोड दिया।

द्वेष करना दुष्टोंका स्वभाव है

पौराणिक तथा कुछ विधर्मी स्वामीजीकी उठती हुई कीर्तिको सुनकर उसको सहन न कर सके। अतः स्वामीजीको अपवादित करनेके लिये उन्होंने अजीब उपाय तथा समय चुना। परन्तु आत्मिकशक्ति और सत्यके सामने असत्य वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे सूर्यके सामने अन्धकार और वेद-ज्ञानसे अज्ञान नष्ट हो जाता है। किसीने ठीक ही कहा है कि सांचको आंच कहाँ? स्वामीजीकी उदारता देखकर उनकी महानताके सामने श्रद्धासे शिर झुक जाता है।

संस्कृत सारे हिन्दुओंकी भाषा है

(आरामें)

मजिस्ट्रेटने स्वामीजीसे संस्कृत बोलनेका कारण पूछा तो उन्होंने (स्वामीजीने) कहा कि भारत वर्षमें द्राविड प्रभृति अनेक भाषायें वोली जाती हैं तब में किस भाषामें बोलूँ? इसके अतिरिक्त संस्कृत सारे हिन्दुओंकी भाषा है और समस्त भाषाओंका मूल है, संस्कृत बोलना ही उचित है।

वैदिक सम्पत्तिके ३०२ पृष्ठसे

संस्कृत	द्राविड (तेलगू)		अर्थ	संस्कृत	द्राविड (तेलगु)		अर्थ
अन्यः	अन्नि	=	इसे; सब	देवम्	दय्यमु	=	भूत-प्रेत
मनुष्यः	मनजुडु	=	आदमी	अटविः	अडवि	=	जंगल
इह	ई	=	यहां	उडुपः	ओड	=	जहाज
मंजुः	मंछि	=	अच्छा	काकः	काकि	=	कौआ
अम्बुदः	मब्बु	=	मेघ	द्यौः	दिवसु	=	सूर्य
उष्ट्रः	वंटे	=	ऊंट	मेषः	मेक	=	बकरा

विवाहमें व्यर्थ व्यय

" फर्रुखाबाद दिनांक. २० नवम्बर १८७३ "

एक दिन पं. राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी सेठ निर्भयराम, पं. गंगादत्त तथा अन्य लोगोंको साथ लेकर स्वामीजीके पास गये और उनके सामने कुछ मिष्टान्न रक्खा। स्वामीजीने पूछा यह कैसा है तो सेठजीने उत्तर दिया कि मेरे पुत्रके विवाहमें यह अन्न बना था, उसीमेंसे आपकी सेवामें लाया हूं। स्वामीजीने कहा कि हमने सुना है कि आपने पुत्रके विवाहमें बहुत व्यय किया है। इस प्रकार आप कंगाल हो जायेंगे। और फिर आपको कोई सेठजी नहीं कहेगा। विवाहमें इतना धन व्यय करना अनुचित है। अकर्मण्य, भोजन लोलुप ब्राह्मणको खिलाने कुछ इष्ट नहीं होता। पुलिसवालोंको खिलानेसे फल होता है, वह रात्रीमें आपके घरोंकी रक्षा करते हैं।

सुन्दर सुझाव

" स्वामी भविष्य-द्रष्टा थे, उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टिसे देखा था कि सोनेकी चिडिया भारत; जहाँयहाँ दूध, वहीकी नदियां बहती थी वहांके लोग अपने पेट भरनेके लिये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमेरिका आदि देशोंके सामने हाथ पसारेंगे । इस दृष्टिसे स्वामीजीने देशको मितव्ययताकी राय दी थी । दूसरी बात यह बताई कि देशका अन्न उन्हींको खाना चाहिए जिन्होंने देश और धर्मकी भलाईके लिये अपना जीवन दे दिया हो । इस समय सिपाही और सैनिक देशकी रक्षाका दायित्व रखते हैं अतः उन्हें खिलाना ही उत्तम है । यह थी स्वामीजीकी राष्ट्रीय-भावना जो आजके युगसे कितनी साम्यता रखती है।

मांस कामरिपुका वर्द्धक है

(काशी मई १८७४)

एक १४, १५ वर्षका मुसलमान नवयुवक प्रतिदिन महाराजके सत्संगमें आता और उसकी समाप्ति कर चला जाता था । एक दिन ऐसा हुआ कि जब वह स्वामीजीके पास पहुंचा तो स्वामीजी अकेले थे । स्वामीजीने उससे कहा तुम रोज हमारे पास क्यों आया करते हो ? उसीपर उससे बातचीत आरम्भ हो गई । उसने महाराजसे पूछा कि मांस खाना अच्छा है या बुरा ? तो महाराजने उत्तर दिया कि मांस काम रिपुका वर्द्धक है । इसीसे मुसलमान बहुत कामासक्त होते हैं । मांस खाना हानिकारक और मांसका खाना अनुचित है ।

यह प्रश्न आजभी वैसे ही है

स्वामीजी अपने सत्यार्थ-प्रकाशमें आपद्-धर्म या औषध रूपमें मांस-भक्षणकी राय देते है । मांस गरीब पशु-पक्षियोंकी नहीं होनी चाहिये, अपितु हिंसक-पशु जो आखेट अर्थात् शिकारमें मारे जाते हैं उनका मांस खाया जा सकता है । स्वामीजीने बताया कि मनुष्यके जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष-लाभ करना है । मांस-भक्षणसे बना हुआ मन मोक्ष-प्राप्तिमें साधक नहीं सिद्ध होता अपितु बाधक होता है, अतः मांस-भक्षण ठीक नहीं ।

मुसलमानोंमें बुतपरस्ती

मौलवी साहबके चले जाने पर स्वामीजीने कहा कि मुसलमानोंने औरोंकी छोटी छोटी मूर्तियोंको तोड दिया परन्तु अपने घरकी मूर्तिकी पूजा न छोडी । मुसलमानोंकी मूर्ति कृष्ण पाषाण (हजरुल् अस्वद) है । जो मक्काके मन्दिरमें बडी सुन्दरतासे लगा हुआ है । जहां मुसलमानोंके झुंडके झुंड पृथ्वीके सब मार्गोंसे जाते हैं । और मुसलमानोंमें मक्केकी यात्रा (हज्ज) मोक्षका साधन मानी जाती है ।

विशेष

"श्री मुहम्मद साहबने प्रथम अपने घरकी मूर्तियोंको तोडा परिणाम स्वरूप उन्होंने बडी मुसीबतका मुकाबिला किया । इनके शिष्य और अनुयायी लोगोंने घरमें मूर्तियोंकी तो स्थापना की परन्तु अन्य मजहबवालोंकी मूर्तियोंको तोडा, मन्दिरोंको लूटा और असंख्य व्यक्तियोंको मौतके घाट उतारा । शहीदोंकी कबरोंकी पूजा, ताजियादारी, मस्जिदोंमें काबेकी तरफ मुंह करके नमाज पढना, हजकरनेवालोंका संगे असवदका बोसा लेना; क्या यह सबसे बडी मूर्ति-पूजा नहीं है । ईश्वर करे ये लोग अपनी गलतियोंका अब भी अनुभव करें और देशके संगठनमें सहयोग दें" ।

मिठाईमें विष दिया गया

" दयानन्द प्रकाशसे "

एक दिन महाराज ध्यानसे निवृत्त होकर हंसते हुये बाहर आये तो पण्डित सुन्दरलालने हंसनेका कारण पूछा । उन्होंने कहा कि एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है थोडी देर ठहर जाईये, उसके आने पर आपको एक कौतुक दिखाई देगा । थोडी देर पीछे एक मनुष्य आया और नमो नारायण करके बैठ गया । उसने कुछ मिठाई महाराजके आगे रखकर पानेकी प्रार्थना की । उन्होंने कहा थोडी सी मिठाई तुम भी लो । परन्तु उसने न ली, तब महाराजने डाटकर कहा, तो भी उसने न ली और वह कांपने लगा । महाराजने कहा कि यह हमारे लिये विषाक्त मिष्टान्न लाया है । पण्डित सुन्दरलालने उसे पकडना चाहा, परन्तु महाराजने उसे उन्हें पकडने न दिया और उसे क्षमाकर दिया । फिर उसमेंसे पण्डित सुन्दरलालने थोडी सी मिठाई एक कुत्तेको खिलाई, कुत्ता उसे खाकर मर गया ।

मनोरंजक कहानी

देशके नाशका यही कारण है

(स्वामीजीने बम्बईमें सुनाई थी)

एक दिन स्वामीजीका व्याख्यान हो रहा था श्रोतागण कई सहस्रोंकी संख्यामें उपस्थित थे । स्वामीजीने राजाओंके विनाशका उल्लेख करते हुये कहा कि राजाओंके परामर्श-

+

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दाता ऐसे लोग होते हैं जैसे (१) ज्योतिषी, (२) तेली (३) ऊंटवाला (४) हिजडा। किसी राजा पर एक शत्रु चढ-आया और दुर्गके भीतर घुसने लगा, तब राजाको उसके आक्रमणका ज्ञान हुआ। उसने पहले ज्योतिषीसे पूछा, ज्योतिषी बोला– अभी महाराजके भद्रा है। तेलीसे पूछा तो उसने कहा कि ऐसी क्या जल्दी है ? अभी आप तेल देखिये तेलकी धार देखिये। फिर ऊंटवालेसे पूंछा, उसने कहा महाराज देखिए ऊंट किस करवट बैठता है। फिर हिंजडेसे पूछा, उसने कहा कि आप कनात तान लें। क्या वह पर्देके अन्दर भी घुस आयेगा। ये बातें होती रहीं और शत्रु सेना दुर्गके भीतर घुस आई। यदि हमारे राजाओंकी यह दुर्दशा न होती तो हमारी यह दुर्दशा क्यों होती ? देशके नाशका यही कारण है

आप-बीती कथा

स्वामीजीके बलिदानका यत्न

(स्वामीजीके मुखारविन्दसे)

मैं जिन दिनोंमें एकाकी घूमता था, उन दिनोंमें मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहां सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बडी सेवासुश्रूषा की। जब कई दिनके निवासके अनन्तर, मैं वहाँसे चलने लगा तो उन लोगोंने अत्याग्रहसे मुझे ठहरा लिया, मैं समझता रहा कि ये भक्तिभावसे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनके पर्वका दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त देवीके मन्दिरमें एकत्र हो कर गीत गाने लगे। उस दिन उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिरमें उत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिए। मैंने बहुत समझाया कि देवीके दर्शनमें मेरा निश्चय नहीं है, परन्तु वे एक न सुनते थे। पांव पकडकर वे कहने लगे कि यदि आज पर्वके दिन मन्दिरमें न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जायगा। आप मूर्तिको नमस्कारादि कुछ भी न करना, परन्तु हमारे लिए चले तो चलिए।

वह मन्दिर नगरसे बाहर एक उजाड स्थानमें था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिरमें जाना पडा। उस समय वहां आंगनमें होम हो रहा था। और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वह दुर्गाकी मूर्ति दिखलानेके बहानेसे भीतर ले गये। मैं सहज स्वभावसे दुर्गाकी प्रतिमाके समक्ष खडा हुआ। मूर्तिके पास एक बलिष्ठ व्यक्ति नंगी तलवार लिये खडा था।

वहां वे लोग मुझसे कहने लगे 'महात्माजी ! माताके आगे झुक कर नमस्कार अवश्य कीजिए।' मैंने उनसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मुझसे ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। मेरे वचनोंसे पुजारी चिढ गया और पास आकर मेरी ग्रीवा (गर्दन) को पकडकर मेरे सिरको नीचा करने लगा। उसके इस वर्तावसे मैं चकित हो गया, परन्तु ज्योंहि मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हुं कि वह खड्गधारी मेरे पास आगया है। और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है।

इस दृश्यको देख कर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपट कर उसके हाथसे तलवार छीन ली। पुजारी तो मेरे बायें हाथके एक ही धक्केसे मन्दिरकी दीवारसे जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिरके आंगनमें आ गया। उस समय आंगनके सभी लोग कुल्हाडा छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पडे। द्वारकी ओर देखा, तो उसमें ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदानसे बचानेके लिये मैं उछल कर दिवाल पर चढ गया। और परलेपार कूद कर भाग निकला। दिन भर तो मैं वहीं छिपा बैठा रहा, परन्तु जब रातका राज्य विस्तृत हो गया तो रातों रात ग्रामान्तरमें जा पहुंचा। उस दिनसे मैंने शाक्त लोगोंका विश्वास कभी नहीं किया ?

स्वामीजीकी पर्ण कुटीमें आग लगा दी

एक वार महाराज एक पर्णकुटीमें निवास कर रहे थे। समीप ही कुछ साधुओंका डेरा भी था। साधुलोग स्वामीजीसे अकारण ही वैर रखते थे। एक दिन रात्रिके समय जब कि घोर अन्धकार छाया हुआ था वह पर्णकुटीके पास गये और स्वामीजीका वध करनेका परामर्श करने लगे। स्वामीजीने भी उनकी बातें सुन लीं। उन लोगोंने थोडी देर पीछे कुटीमें आग लगा दी। जब वह जलने लगी तो स्वामीजी छप्परको उठाकर बाहर चले आये।

कंकरोंके बदले लड्डु

(दयानन्द प्रकाशसे)

एक पाठशालाके अध्यापकने एक दिन अपने छात्रोंसे कहा कि आज कथामें चलेंगे, तुम अपनी अपनी झोलियोंमें ईंट, रोडे और कंकर भर कर मेरे साथ चलना और जब मैं संकेत करूं तो कथा कहने वाले पर इंटे, रोडे और कंकरोंको फेंक देना, मैं तुम्हें लड्डू दूंगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अबोध बालकोंने अपनी झोलियां ईंट, रोडो और कंकरोंसे भर लीं और दुष्ट अध्यापकके साथ स्वामीजीकी कथामें पहुंचे। व्याख्यान रात्रिके आठ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ कुछ अंधेरा हो गया तो अध्यापकका संकेत पाकर बालक महाराज पर ईंट, रोडे और कंकर फेंकने लगे। सभामें हलचल मच गई, परन्तु महाराजने सबको शान्त कर दिया। पुलिस सब बालकोंको पकड कर उनके सामने लाई तो बालक फूट फूट कर रोने लगे। स्वामीजीने उन्हें ढाढस बंधाकर उनसे ऐसा करनेका कारण पूछने लगे तो उन्होंने सारा वृत्तान्त साफ साफ कह दिया। तब महाराजने बाजारसे लड्डू मंगा कर बालकोंको दिये और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इस लिये मैं ही दिये देता हूं।

कमरेकी छत धडामसे गिर पडी

(दयानन्द प्रकाशसे)

एक दिन स्वामीजी कमरेमें बैठे हुए पण्डितोंको वेदभाष्य लिखाते लिखाते कमरेसे बाहर आगये। और कर्मचारियोंसे कहा कि झटपट कमरेकी सब चीजें बाहर ले आवो। कर्मचारियोंने आज्ञाका पालन तो किया परन्तु वह न समझ सके कि स्वामीजीने ऐसी आज्ञा क्यों दी। जब सब वस्तुयें कमरेसे हटा ली गईं तो कमरेकी छत धडामसे गिर पडी।

पवित्र हृदय रखना भी संसारका उपकार है

दयानन्द प्रकाशसे

एक साधारण स्थितिका मनुष्य महाराजके सत्संगमें आया करता था। एक दिन उसने महाराजसे निवेदन किया कि धनी लोग तो परोपकार और दान पुण्य करके संसार सागरसे पार हो सकते हैं, परन्तु मुझ जैसे निर्धनोंका निस्तार कैसे होगा? महाराजने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम अपने हृदय पर अपकार और अनिष्ट चिन्तनके भावोंको निकाल दो। ऐसा करना भी संसारका उपकार है।

आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी

एक प्रश्न

एक दिन कुछ हिन्दुओंने आपसमें मंत्रणा (सलाह) करके स्वामीजीसे यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं कि अज्ञानी। इससे उनका अभिप्राय यह था कि यदि वह ज्ञानी कहें गे तो हम कहेंगे कि आप अहंकार करते हैं सन्तोंको अहंकार नहीं करना चाहिए। और यदि वह अज्ञानी कहेंगे तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो हमें आप क्या सिखावेंगे? महाराजने उस प्रश्नका ऐसा उत्तर दिया कि वह देखते रह गये। और लज्जित होकर चले गये। स्वामीजीने कहा कि कई में बातोंमें ज्ञानी और कई बातोंमें अज्ञानी हूं। संस्कृत और धर्म विषयमें ज्ञानी और फारसी, दूकानदारीके विषयमें अज्ञानी हूं।

ब्रह्मचर्यकी महिमा

४ मार्च सन् १८७८

(स्थान—गुजरानवाला)

एक दिन महाराजने अपने व्याख्यानमें कहा था कि हरिसिंह नलवा बडा शूर था। उसका कारण सम्भवतः यही था कि वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा था। उन्होंने यही भी कहा था कि मेरी आयु इस समय ५१ वर्षकी है मेरा ब्रह्मचर्य अखण्डित है। मैं दृढता पूर्वक कहता हूं किसीको अपने बलका घमन्ड हो तो मैं उसका हाथ पकड लेता हूं छुडा लेवे अथवा मैं अपना हाथ खडा करता हूं उसे झुका देवे। उस समय लगभग ५०० की उपस्थिति रही होगी, जिनमें कई कश्मीरी पहलवान भी थे, परन्तु किसीको महाराजके आह्वानको स्वीकार करनेका साहस न हुआ।

ब्राह्मणोंकी हीन दशा

ब्राह्मणोंकी वर्तमान अवस्था पर एक दृष्टान्त

पीर, बावरची, भिस्ती, खर

एक यात्रामें एक साहूकारका साथ हो गया। साहूकारके साथ उसका एक भृत्य भी था जो ब्राह्मण था। जब प्रातःकाल होता तो साहूकार उस भृत्यसे कहता, महाराज पांव लागूं, जब आवश्यकता होती तो भृत्य उसके पीने, हाथ धुलाने और स्नान करानेके लिये जल लाता, उसकी रसोई बनाता और यात्रामें उसका बोझा उठाकर चलता। एक दिन पठान आगे निकल गया और साहूकारका पीछे रह गया। पठान उसे साथ लेनेके लिये ठहर गया। थोडी देरके पश्चात् साहूकार तो आ गया, परन्तु उसका भृत्य उसके साथ न था। यह देख कर पठानने कहा कहां है तुम्हारा नर, पीर, बावरची, भिश्ती, खर।

अभिप्राय— कुछ लोग उक्त दृष्टान्तको पढकर सोचेंगे कि स्वामीजी ब्राह्मण-जातिका उपहास करते थे। स्वामीजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्यासी थे वे सभी लौकिक बन्धनों और जाति-पांतिकी भावनाओंसे सर्वथा मुक्त थे। उनकी दृष्टिमें सभी मनुष्योंका कल्याण था। ब्राह्मण; जो गुण, कर्म, स्वभावसे पूर्वके समयमें पठन, पाठन, याजन, यजन, शिक्षण और उपदेशका कार्य करते थे उनकी इस अवनत दशाको देख कर स्वामीजीको महान् दुःख होता था। अतः स्वामीजीने इनकी दीन हीन दशाको उनके सामने उपस्थित किया। अगर कोई इसे ब्राह्मणोंकी निन्दा समझता तो वह स्वामीजीकी सुहृदयताके साथ न्याय नहीं करता। जैसे शरीरमें मस्तिष्क शरीरका संचालक होता है वैसेही समाज और राष्ट्रमें ब्राह्मणत्व अर्थात् अध्यापकत्व, गुरुत्व, शिक्षकत्व आदि गुणवाले व्यक्ति ही समाज और राष्ट्रके संचालक होते हैं। स्वामीजीने देखा भारतमें ब्राह्मणत्वका ह्रास हो चुका है; अतः क्षत्रियत्वादि गुण भी भारतसे लुप्त हो गये हैं। ब्राह्मणत्व ही देश, समाजकी आत्मा है, यही संस्कृति और सभ्यताका मूल आधार है। अगर इस गुणका पुनर्विकास न किया जायगा तो देशकी संस्कृति ही नष्ट हो जायगी,। इसलिये स्वामीजीने देशमें ब्राह्मणत्वके पुनरुद्धारके लिये वर्तमान ब्राह्मणत्वके हामी भरनेवाले अयोग्य ब्राह्मणोंके गुण-दोषोंकी विवेचना की। इस विवेचना में द्वेष या शत्रुताकी कोई भावना नहीं थी; इस विवेचनामें स्वामीजीका सद्भाव ही कार्य कर रहा था।

एक बात यहां विशेष ध्यान देनेकी है वह यह है कि स्वामी दयानन्द ब्राह्मणत्वका पुनरुद्धार कर रहे थे। ब्राह्मणकी तमाम विशिष्टताओंको ब्राह्मणत्व कहते हैं, यह गुण विशेष हैं न कि ब्राह्मण-जाति। जिसका अधिकारी मानव-मात्र हो सकता है। जैसे प्रत्येक नेत्रवाला मनुष्य सूर्यके प्रकाशका अधिकारी होता है उसी प्रकार विशिष्ट प्रभा तथा आचरण-वाला व्यक्ति भी ब्राह्मणत्वका अधिकारी हो सकता है। स्वामी शंकराचार्यजीने जिस ब्राह्मणधर्मका प्रचार किया था उसमें ब्राह्मजातिका ही अधिकार था उसमें सार्वभौमिता नहीं थी। परन्तु स्वामीजीने जिस ब्राह्मणत्वको उद्बोधित किया वह सार्वभौमिक तथा सार्वजनिक था। अविद्याका अभाव करना ही ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मणत्वमें सात्विक और कर्मका समन्वय होता है। ज्ञान भी सात्विक, राजसी और तामसी होता है, गीता तथा उपनिषदोंमें इसकी विशेष विवेचना है। अतः महर्षिने ब्राह्मणत्वको संसारमें प्रश्रय देनेका प्रयास किया। आर्यसमाज इस कार्यको सम्पन्न करनेका उत्तरदायी है।

मांस भक्षणसे आत्मोन्नति असम्भव

एक दिन पण्डित कृष्ण नारायणने स्वामीजीसे कहा कि मांस भक्षणसे कोई हानी होती हुई प्रतीत नहीं होती, तो महाराजने कहा कि ईश्वरकी आज्ञायें हमें लाभदायक हैं। और वेद मांस-भक्षणके विरुद्ध है। वेदकी (ईश्वरकी) आज्ञाका उल्लंघन हानि कारक है। मांस-भक्षण शरीरके लिये यदि हानिकारक न भी हो, परन्तु आत्मोन्नतिके लिये अवश्य हानिकारक है। माँसाहारीको योग विद्या नहीं आती और उसे सिद्धि अर्थात् परमेश्वरका साक्षात्कार नहीं होता। महाराजने पण्डित कृष्णनारायणसे कहा कि यदि आपको विश्वास न हो तो में आपको एक विधि बताता हूं। निरा-मिष भोजन कीजिये और ४० दिन तक उसके अनुसार कार्य कीजिये। पण्डितजी कहते हैं कि मैंने ३० दिन तक उस विधिको किया तो मेरे शरीरमें बल और स्वास्थ्य बढ गया। जिसके आनन्दको में शब्दोंमें वर्णन नहीं कर सकता और मेरा मस्तिष्क इतना प्रकाशयुक्त हो गया जैसे सूर्यो-दयसे सब संसार हो जाता है। और मुझमें भविष्य ज्ञान लेनेके ज्ञान प्रकट होने लगे। परन्तु ३१ वें दिन मैंने मांस खा लिया जिससे तुरन्त ही मेरा मस्तिष्क अन्धकारमय हो गया और जो कुछ मेंने प्राप्त किया था वह सब जाता रहा।

निर्धन होनेकी चिन्ता मत करो

एक दिन स्वामीजीने व्याख्यानमें कहा था कि लोग कहते हैं कि अंग्रेज लोग धनी और देशी निर्धन होते जाते हैं। इसकी चिन्ता न करनी चाहिए, क्योंकि अंग्रेज जितने अधिक धनी होते जायेंगे उतने ही इन्द्रियाराम होते जायेंगे। इससे वह आलसी होंगे और आलसी निर्बल होते हैं। देशी लोग जितने ही निर्धन होंगे उतने ही परिश्रमी बनेंगे, इससे देशी लोग लाभमें रहेंगे।

सदाशय— धनका परोपकारार्थ सदुपयोगही त्याग है। त्यागकी स्थितिमें संचयकी मात्रा स्वल्प होती है। परन्तु जब धनका त्याग नहीं होता तो वह धन भोगीको विषयी बनाकर उसे नष्ट कर देता है। अंग्रेज हमारे देशको दासता की बेडीमें जकडे हुये थे, स्वामीजीके हृदयमें सन १८५७ की असफल क्रान्ति खटक रही थी। अतः स्वामीजीने अंग्रेजो के प्रति भावकी अभिव्यक्तिकी थी। स्वामीजी अंग्रेजों का अशुभ नहीं चाहते थे, चूंकी उनकी बुद्धि देशको गुलाम बनानेकी थी अतः स्वामीजीने उक्त बातें कहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दू युवक ईसाई होनेसे बचे

अमृतसरमें लगभग चालीस हिन्दू नवयुवकोंके विचार मिशन स्कूलमें ईसाई धर्मकी शिक्षा पाने और ईसाईयोंके संसर्गसे ईसाई धर्ममें शरण लेने वाले थे। वह नाममात्रके हिन्दू रह गये थे, यहाँतक कि वह अपनेको unbaptised Christians (बपतिस्मा न पाये हुए ईसाई) कहने लगे थे और उन्होंने अपनी एक सभा अलग बना ली थी। जिसका नाम Prayer Meeting (उपासना सभा) रख छोडा था और प्रति रविवारको उनका अधिवेशन हुआ करता था। जब उन्होंने महाराजके उपदेश सुने तो वैदिक धर्मकी सच्चाइयोंसे अवगत हुये और ईसाई धर्मके भ्रम-मूलक सिद्धान्त भी उन पर प्रकट हो गये। तब वह ईसाई होनेसे बचे।

डारविनकी कल्पनाका खण्डन

डारविनकी कल्पनाके विरुद्ध स्वामीजीने यह युक्ति दी थी कि जिस समय वानरसे नर उत्पन्न हुआ, कोई बन्धन इस प्रकारका नहीं लगाया था कि आगेको वानर उसी प्रकारका कर्म करके नरको फिर उत्पन्न नहीं करेगा, फिर क्या कारण है कि उस कालके पश्चात अबतक एक भी नर वानरसे उत्पन्न नहीं हुआ, जब कि वह सब नर पशु और नारी पशु, जिनके संयोगसे पशु हुआ था, पृथ्वी पर उपस्थित रहे। दूसरे यह कहा जाता है कि दो भिन्न जातियोंके नर और नारीके मेलसे एक नई जातिके पशु उत्पन्न हुए और फिर उनके अन्य जातियोंके पशुओंसे समागम करनेसे एक और नई जाति उत्पन्न हुई और इस प्रकार होते होते मनुष्यका पृथ्वी पर अविर्भाव हुआ। इस पर महराजने कहा कि दो भिन्न जातियोंके पशुओंके मेलसे सन्तान ही नहीं होती और जब अब नहीं होती तो पहले भी नहीं हो सकी होगी।

आगे चल कर स्वामीजीने कहा कि सूर्यका न घूमना, पृथ्वीका परिभ्रमण, अमेरिकाका वर्णन, मेघ आदिका वर्णन, आकर्षणके सिद्धान्त आदि बातोंके अन्वेषण कर्त्ता योरोपीय लोग माने जाते हैं। परन्तु संस्कृत ग्रन्थोंमें इन विषयोंका वर्णन प्रथम सेही विद्यमान था। महाराजने उक्त विषयोंको वेद मंत्रों (आकर्षणके सिद्धान्त) तथा अन्य ग्रन्थोंके प्रमाणसे उसकी प्राचीनताको सिद्ध करके विद्वानोंको सन्तुष्ट कर दिया।

मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर

(नशेमें ध्यान नहीं लगता।)

लाला कन्हैयालालने प्रश्न किया कि नशेकी दशामें ध्यान खूब लगता है। और मनुष्य उसीमें मग्न हो जाता है अतः-जैसा अच्छा ध्यान परमेश्वरका नशेकी दशामें हो सकता है, वैसा अन्य दशामें नहीं हो सकता। महाराजने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है, परन्तु उसे उस वस्तुका तात्त्विक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ऐसा ज्ञान एक वस्तुका दूसरी वस्तुके साथ यथार्थ सम्बन्ध स्थिर करनेसे होता है और यह नशेकी दशामें होना असम्भव है। उसमें गुणीका गुणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसी दशामें ईश्वरका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इस उत्तरको सुनकर वह बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए।

सर सय्यद अहमद खांके घर पर भोजन करने नहीं गये

'२३ अगस्त सन् १८७८ को सर सय्यद अहमद खांने महाराज तथा बम्बईके सज्जनोंको सन्ध्याके समय अपने गृह पर भोजनार्थ निमंत्रित किया। उन्होंने समझा था कि महाराज जाति-भेद नहीं मानते हैं और कहते हैं कि सबके हाथका पकाया हुआ भोजन खाया जा सकता है, अतः उन्हें हमारे घर पर भोजन करनेमें कोई आपत्ति न होगी, परन्तु महाराज भोजन करने न गये और कहा कि यद्यपि मुसलमानोंके भोजनमें सम्मिलित होने और भोजन करनेमें कोई दोष नहीं है, परन्तु ऐसा करनेसे हमारे देशवासियोंमें हमारे प्रति अश्रद्धाका उदय होगा और हमारे उद्देश्योंकी सिद्धिमें बाधा पडेगी, परन्तु श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि भोजनमें सम्मिलित हुये थे।

अन्य जाति या धर्मवालोंके हाथका पका वा छुआ हुआ भोजन खानेमें वैदिकधर्मियोंकी कुछ हानि वा भलाई बुराई है या नहीं ? यह प्रश्न कुंवर ज्वालाप्रसादने महाराजसे किया था, तो उन्होंने उत्तरमें कहा था कि न कुछ भलाई है, न बुराई।

सदाशय—इस घटनासे हिन्दूलोग स्वामीजीकी भावनाको अनुचित मानते होंगे। परन्तु न्यायकी दृष्टिसे देखा जाय तो मांस बिना कष्ट दिये नहीं प्राप्त हो सकता। गाय और बकरीको हलाल करने पर दोनोंको समान ही दुःख होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह दूसरी बात है कि गाय बकरीसे बहुत ज्यादा उपयोगी है। परन्तु इस भावनामें स्वार्थकी प्रधानता है। हिन्दू भी गायको छोड कर अन्य प्राणियोंकी मांस रखते हैं। देखा जाता है कि एक ही परिवारमें मांसाहारी और शाकाहारी दोनों प्रकारके व्यक्ति होते हैं परन्तु उनका खानपान आपसमें एक साथ होता है। अगर मुसलमान शुद्ध और मांसरहित भोजन स्वच्छतासे खिलाते हैं तो स्वामीजीकी रायमें खानेमें कोई दोष नहीं।

प्राचीन भारतकी महिमा

एक दिन कुछ अंग्रेजी भी महाराजके पास आये। महाराजने उनसे कहा कि आप लोग भारतकी अवनति और फूटके समय यहां आये हैं यदि उसकी उन्नतिके समय यहां आते तो देखते कि यहां कैसे कैसे शूरवीर और योद्धा विद्यमान थे और आप उनकी विद्या और कलाकी प्रशंसा करते।

क्यों देश नष्ट हो गया ?

एक दिन बैठे हुये थे कि सहसा लेट गये। लोगोंको इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। थोडी देर पश्चात् महाराज उठे और दीर्घ श्वास खींचकर कहा कि विधवाओं और गौओंकी हायसे देश नष्ट हो गया।

समीक्षा— स्वामीजी तथा उनके आर्य-समाजके द्वारा विधवाओंकी कुछ थोडीसी दशा सुधरी है। परन्तु स्वतंत्र भारतमें जब कि गोभक्तोंकी संख्या अधिकाधिक है तब भी गायोंका वध बहु संख्यामें हो रहा है। इसका मुख्य कारण हिन्दुओंकी मांस खानेकी अभिरुचिकी वृद्धि भी है, और गोरक्षाके कानूनका ढीलापन तो है ही।

एक धर्मसे ही मेल और एकता संभव

एक दिन ईश्वरसिंह और एक अन्य साधु महाराजके पास बैठे थे। महाराजने देखा कि बहुतसे साधु एक ओरको जा रहे हैं। स्वामीजीने उस साधुसे पूछा कि साधु लोग कहाँ जा रहे हैं। उसने कहा कि एक प्रसिद्ध उदासी साधू आये हैं उन्हींसे मिलने जा रहे हैं। महाराजने इस पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि देखो भारतवर्षमें सनातन वेद- विरुद्ध कितने मत मतान्तर चल गये हैं, कोई उदासी है, तो कोई निर्मला है, कोई वैरागी है तो अन्य सम्प्रदायका, मूल धर्म सबने छोड दिया। ईश्वरसिंहने कहा कि महाराज एक धर्म होना तो कठिन है। महाराजने कहा— पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए, इससे बहुत कुछ मेल और एकता हो सकती है।

सदाशय— स्वामीजीका विश्वास था कि बुद्धिपूर्वक किए गये पुरुषार्थसे सब कुछ साध्य है। जिन कर्तव्योंसे मानव-मात्रकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति साध्य है वे कर्तव्य-कर्म ही धर्म हैं। और ये सबके लिए सामान्य हैं। अतः सबका धर्म एक है। और धर्मके द्वारा ही मेल और एकता हो सकती है, और मजहब, मत सम्प्रदायके द्वारा एकता नष्ट भी हो सकती है। + + +

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी ?
(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी ?
(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी ?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो " राज्यव्यवस्था " का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए।
यदि आप समाजसुधारक हैं तो " समाजव्यवस्था " आपको अवश्य देखनी चाहिए।
यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो " अर्थव्यवस्था " पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी।
और यदि आप अधिकारी हैं तो " प्रजाव्यवस्था " पर आपको ध्यान रखना पडेगा।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गई हैं। क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है। सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकासे ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १२) (डा. व्य. पृथक्) है। शीघ्रता कीजिए आज ही मंगवाए।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२४८ सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥
२४९ वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्योऽ वहन्ति ॥ ८ ॥
२५० भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥
२५१ एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥

अर्थ— [२४८] (यत् ईं) जब इस इन्द्रको (भार्वरस्य सत्रा) भार्वरके यज्ञमें तथा (यत् ईं औशिजस्य गोहे) जब इसको उशिक् ऋषिके पुत्रके घरमें (धिये, अयसे, मदाय) बुद्धि बढानेके लिए, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए और आनन्दके लिए (वृष्णः सिषक्ति) बलवर्धक सोम सींचता है, तब यह (भराय) भरण पोषणके लिए (स्तुवते) स्तोताको (गुहा) गुहामें रखे हुए धनको (प्र) देता है ॥ ७ ॥

[२४९] इन्द्रने (यत्) जब (पर्वतस्य वरांसि वि वृण्वे) पर्वतके दरवाजोंको खोल दिया, तथा (यदि) जब (अपां जवांसि पयोभिः जिन्वे) नदियोंके वेगोंको जलोंसे पूर्ण किया, तब उसने (गौरस्य गवयस्य विदद्) हिरण और गायके समूहको प्राप्त किया । (सुध्यः) बुद्धिमान् ऋत्विज् (गोहे) यज्ञशालामें (वाजाय) इस बलवान् इन्द्रके लिए (वहन्ति) सोम पहुंचाते हैं ॥ ८ ॥

[२५०] हे इन्द्र ! (ते हस्ता भद्रा) तेरे हाथ कल्याण करनेवाले हैं, (उत) और (पाणी सुकृता) तेरे पंजे उत्तम कर्म करनेवालेहैं , तथा वे (स्तुवते राधः प्रयन्तारा) स्तोताको धन देनेवाले हैं । (ते निषत्तिः का) तेरे रहनेका स्थान कौनसा है ? (उत्) और तू हमें (किं न ममत्सि) क्यों नहीं आनन्दित करता ? (उत्) और हमें (दातवै) धन देनेके लिए (किं न हर्षसे) क्यों नहीं हर्षित होता है ? ॥ ९ ॥

[२५१] (एवा) इस प्रकार (सत्यः वस्वः सम्राट्) अविनाशी, धनोंका सम्राट् (वृत्रं हन्ता) वृत्रको मारनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (पूरवे वरिवः कः) यजमानके लिए धन देता है । हे (पुरुस्तुत) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (क्रत्वा) अपने पराक्रमसे (नः रायः) हमें धनसे (शग्धि) समर्थ कर, मैं (ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय) तेरे दिव्य संरक्षणका उपभोग करूं ॥ १० ॥

१ सत्यः वस्वः सम्राट्— यह सच्चे धनोंका सम्राट है ।
२ पूरवे वरिवः कः— यज्ञ करनेवालेको धन देता है ।
३ ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय— तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ— जब किसी भरणपोषण करनेवाले अथवा किसी पदार्थकी कामना करनेवालेके घरमें इस इन्द्रके लिए बलवर्धक सोम सींचा जाता है, तब यह इन्द्र बुद्धिके लिए, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए अपने भक्तको अत्यन्त गुप्त धनकोभी बता देता है ॥ ७ ॥

इन्द्रने जब पर्वतोंके दरवाजोंको खोल दिया, तो जलके प्रवाह भरपूर वेगसे बहने लगे । तब जब सर्वत्र धान्यकी बहुतायत हो गई, तब गायें और हिरण आदि पशु समृद्ध और हृष्टपुष्ट हो गए ॥ ८ ॥

इस इन्द्रके हाथ कल्याण करनेवाले और उसके पंजे भी उत्तम कर्म करने वाले हैं । इस पर भी वह हमें आनन्दित क्यों नहीं करता तथा हमें धन देते समय वह हर्षित क्यों नहीं होता, यह विचारणीय है ॥ ९ ॥

वह इन्द्र धनोंका सच्चा सम्राट् है । वह यज्ञ करनेवालोंको धन देता है । उस धनसे वह मनुष्य समर्थ बनता है । हे इन्द्र ! तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५२ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२२]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२५३ यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १ ॥

२५४ वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २ ॥

अर्थ— [२५२] (नद्यः न) जिसप्रकार नदियां जलसे भरी जाती हैं, उसीप्रकार हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्न भरपूर दे। हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्र (अकारि) बनाये हैं, हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

१ रथ्यः सदासाः स्याम— हम रथोंसे तथा सेवकोंसे युक्त हों अर्थात् हमारे पास रथ हों और नौकर भी हों।

[२२]

[२५३] (यः) जो (अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति) वज्रको बलसे धारण करता हुआ आता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः यत्) हमारा जो कुछ है (च) और (यत् वष्टि) जो चाहता है उसका (जुजुषे) सेवन करता है। वह (महान् शुष्मी मघवा) महान् और बलवान् इन्द्र (नः ब्रह्म, स्तोमं, सोमं, उक्था) हमारे अन्न, स्तुति, सोम और स्तोत्रको (आ करति) स्वीकार करता है ॥ १ ॥

१ यः अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति— जो वज्रको धारण करके आता है। वह वीर है। (महान् शुष्मी मघवा) वह बडा बलवान् और धनवान् है।

[२५४] (वृषा) बलवान् (उग्रः) वीर (नृतमः शचीवान्) उत्तम नेता, शक्तिशाली इन्द्र (बाहुभ्यां वृषन्धिं चतुरश्रिं अस्यन्) बाहुओंसे बिजलीके समान तेजको धारण करनेवाले तथा चार धाराओंवाले वज्रको शत्रुओं पर फेंकते हुए (श्रिये) ऐश्वर्यके लिए (परुष्णीं उषमाणः) परुष्णी नदीका उपयोग करता है (यस्याः पर्वाणि) जिस नदीके प्रदेशोंका वह इन्द्र (सख्याय विव्ये) मित्रताके लिए संरक्षण करता है ॥ २ ॥

१ वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषंधि चतुरश्रिं अस्यन् श्रिये— बलवान् उग्र श्रेष्ठ नेता बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धारोंवाले वज्रको यशके लिये शत्रुपर फेंकता है।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसीतरह हमें अन्न दे हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते है। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

जो वज्रको धारण करके आता है, वह वीर, बडा बलवान् और धनवान् है। इसीलिए वह हमारे ऐश्वर्योंका यथेच्छ उपभोग करता है ॥ १ ॥

बलवान्, उग्र, श्रेष्ठनेता, बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धाराओंवाले वज्रको यश प्राप्त करनेके लिए शत्रुपर फेंकता है। वह नदियोंके प्रदेशका संरक्षण करता है ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५५ यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्र भूम ॥ ३ ॥
२५६ विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन् नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
२५७ ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ ॥
२५८ ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥

अर्थ— [२५५] (यः देवः देवतमः) जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव (जायमानः) उत्पन्न होकर (महः वाजेभिः महद्भिः शुष्मैः) बडे सामर्थ्योंसे और बडी शक्तियोंसे युक्त है, वह (बाह्वोः उशन्तं वज्रं दधानः) भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करता हुआ (अमेन) अपने बलसे (द्यां भूम रेजयत्) द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥ ३ ॥

[२५६] (जनिमन्) जन्मते ही (ऋष्वात्) इस महान् इन्द्रसे (विश्वा रोधांसि) सभी पहाड (पूर्वीः प्रवतः) पूर्ण भरी नदियां (द्यौः क्षाः) द्युलोक और पृथ्वीलोक (रेजत) कांपने लगे । (शुष्मी) बलवान् यह इन्द्र (गोः मातरा) सूर्यकी माताओंको-द्यावापृथिवीको (आ भरति) धारण करता है । तथा (वाताः) वायु (नृवत्) मनुष्यके समान (परिज्मन् नोनुवन्त) अन्तरिक्षमें शब्द करते हैं ॥ ४ ॥

[२५७] हे (शूर धृष्णो इन्द्र) शूर और शत्रुओंका घर्षण करनेवाले इन्द्र ! (यत्) जो तूने (दधृष्वान्) लोकोंको धारण करते हुए (शवसा) बलसे (धृषता वज्रेण) शत्रुओंको मारनेवाले वज्रके द्वारा (अहिं अविवेषीः) अहिको मारा (महतः ते) महान् तेरे (ता महानि) वे महान् कर्म (विश्वेषु इत् सवनेषु) सभी यज्ञोंमें (प्रवाच्या) वर्णन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

१ महतः ते ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या— महान् इस इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं ।

[२५८] हे (तुविनृम्ण) अत्यधिक बलशाली इन्द्र ! (ते ता विश्वा) तेरे वे सब कर्म (सत्या) यथार्थ हैं । हे (वृष्णः) बलवान् इन्द्र ! (धेनवः) गायें तेरे लिए (ऊध्नः सिस्रते) थनोंसे दूध चुआती हैं । (अध) और हे (वृषमनः) बलवान् मनवाले इन्द्र ! (त्वद् भियानाः) तुझसे डरती हुई (सिन्धवः) नदियां (जवसा चक्रमन्त) वेगसे बहती हैं ॥ ६ ॥

१ ते ता विश्वा सत्या— इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं, काल्पनिक नहीं ।

भावार्थ— जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव इन्द्र उत्पन्न होनेके साथ ही सामर्थ्यों और शक्तियोंसे युक्त हो जाता है । वह इन्द्र भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करके अपने बलसे द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥ ३ ॥

जन्मते ही इस महान् इन्द्रके बलसे पहाड, जलसे भरी हुई नदियां तथा सभी लोक कांपने लगे । यह बलवान् इन्द्र द्युलोक और पृथ्वी लोकको धारण करता है ॥ ४ ॥

हे शूर और शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्र ! जो तूने लोकोंको धारण किया और अपने बल और वज्रसे अहिको मारा । महान् इन्द्रके ये महान् कर्म सभी उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

अत्यधिक बलशाली इन्द्रके सभी कर्म सत्य हैं । इन्हें असत्य या काल्पनिक नहीं कहा जा सकता । इसी इन्द्रसे प्रेरित होकर गायें अपने थनोंसे दूध चुआती हैं । हे मनस्वी इन्द्र ! नदियां भी तुझसे डरकर वेगसे बहती हैं ॥ ६ ॥

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५९ अत्राहं ते हरिवस्ता उं देवी—रवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत् सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
२६० पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धु—रा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥
२६१ अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
२६२ अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्रा—ऽस्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधी—रस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥

अर्थ— [२५९] हे इन्द्र ! (यत्) जब तूने (सीं प्रसितिं दीर्घां) इस शक्तिशाली बडी नदीको (स्यन्दयध्यै प्र मुचः) बहनेके लिए मुक्त किया, तब हे (हरि-वः) घोडे रखनेवाले इन्द्र ! (बद्बधानाः ताः देवीः स्वसारः) [वृत्रके द्वारा] बांधे हुए उन दिव्य जलोंने (अवोभिः) रक्षण करनेके कारण (ते स्तवन्तः) तेरी स्तुति की ॥ ७ ॥

[२६०] हे इन्द्र ! (त्वा मद्यः अंशुः पिपीळे) तेरे लिए आनन्ददायक सोम पीस दिया गया है। (न सिन्धुः आ यम्याः) जब नदी सोमके पास जावे अर्थात् सोमरसमें नदीका पानी मिलाया जावे (आशुः गोः तुवि- ओजसं रश्मिं न) जिस प्रकार तेजीसे जीनेवाले घोडेके मजबूत लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है उसी तरह (शमी शक्तिः) शत्रुओंका शमन करने वाला शक्तिशाली यह सोम (शुशुचानस्य शशमानस्य अस्मद्र्यक्) तेजस्वी और स्तुतिके योग्य इन्द्रको हमारी तरफ आनेवाला करे ॥ ८ ॥

[२६१] हे (सहुरे) शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! तू (अस्मे) हमारे लिए (सहांसि, वर्षिष्ठा, ज्येष्ठा) शत्रुका पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ और प्रशस्त (नृम्णानि) पराक्रम (कृणुहि) कर। तथा (अस्मभ्यं सु-हननानि वृत्रा रन्धि) हमारे लिए अच्छी तरह मारने योग्य शत्रुओंका नाश कर और (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक मनुष्यके शस्त्रको भी नष्ट कर ॥ ९ ॥

१ हे सहुरे ! अस्मे सहांसि वर्षिष्ठा ज्येष्ठा नृम्णानि कृणुहि— हे शत्रुका पराभव करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराभूत करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर।

२ अस्मभ्यं सुहननानि वृत्रा रन्धि— हमारे लिये वध्य शत्रुओंको मार।

३ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि— हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर।

[२६२] हे इन्द्र ! तू (अस्माकं इत् सु शृणुहि) हमारी ही प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन तथा (त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान्) तू हमारे लिए अनेक तरहके अन्न (उप माहि) दे। (अस्मभ्यं विश्वाः पुरन्धिः इषणः) हमारी तरफ सब बुद्धियोंको प्रेरित कर, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गो-दाः) गायोंको देनेवाला तू (अस्माकं सु बोधि) हमें ज्ञानवान् कर ॥ १० ॥

१ त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान् उप माहि— तू हमारे लिये अनेक प्रकारके अन्न, भोग तथा बल दे।

२ गोदाः अस्माकं बोधि— हमें गायें और ज्ञान दे।

भावार्थ— जब इन्द्रने अपरिमित शक्तिसे सम्पन्न नदियोंके प्रवाहोंको बहनेके लिए मुक्त किया, तब वे शब्द करती हुई बहने लगीं, मानों इस ध्वनिसे वे इन्द्रकी स्तुति कर रही हों ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमरस निकालकर उसमें पानी मिलाकर तैय्यार कर दिया गया है। यह सोमरस इन्द्रको हमारी तरफ उसी तरह खींचकर लाये कि जिसप्रकार तेजीसे जानेवाले घोडोंकी लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है ॥ ८ ॥

हे शत्रुको परास्त करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराजित करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर। तू हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे वध्य शत्रुओंको मार। हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६३ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः, ८-१० ऋतं वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६४ कथा महामवृधत् कस्य होतु- र्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

२६५ को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥

अर्थ— [२६३] (नद्यः न) जिसतरह नदियां जलसे पूर्णकी जाती हैं, इसीतरह हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्न भरपूर दे। हे (हरिवः) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्रको बनाया है। हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२३]

[२६४] (महा कथा अवृधत्) उस महान् इन्द्रको कैसे बढाया ? वह (कस्य होतुः यज्ञं जुषाणः अभि) किस होताके यज्ञका सेवन करेगा ? तथा (ऊधः सोमं पिबन्) गौ दूधसे मिश्रित सोमको पीता हुआ और (उशानः अन्धः जुषमाणः) इच्छापूर्वक अन्नका सेवन करता हुआ वह (ऋष्वः) महान् इन्द्र (शुचते धनाय ववक्ष) तेजस्वी धनको प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

[२६५] (अस्य सधमादं) इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको (कः वीरः आप) कौन वीर प्राप्त करता है ? (कः अस्य सुमतिभिः सं आनंश) कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? (अस्य चित्रं कद् चिकिते) इसके अनेक तरहके धनको कौन जानता है ? तथा यह इन्द्र (शशमानस्य यज्योः) स्तुति करनेवाले यजमानको (वृधे) बढानेके लिए (ऊती) संरक्षणके साधनोंसे युक्त (कद् भुवत्) कब होगा ? ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारी प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन और हमारे लिए अनेक तरहके अन्न दे। हमारी बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित कर। तू हमें ज्ञानवान् कर ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्यको पानी देती हैं, उसी तरह हमें बचा दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

उस महान् इन्द्रको किस तरह बढाया जाए, और वह किस भक्तकी हविका सेवन करेगा, यह जानने योग्य बात है। वह जिस भक्तके द्वारा दिए गए सोमको पीता है, उस भक्तको वह तेजस्वी धन प्रदान करता है ॥ १ ॥

इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको कौनसा वीर प्राप्त करता है ? कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? कौन इसके अनेक तरहके धनको जानता है ? यह इन्द्र अपने स्तोताकी रक्षा करनेके लिए साधनोंसे युक्त कब होता है ? यह सभी बातें कठिनतासे जानी जाती हैं ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६६ कुथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कुथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कुथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥ ३ ॥

२६७ कुथा सबाधः शशमानो अस्य नशदुभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥ ४ ॥

२६८ कुथा कदुस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कुथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥

अर्थ— [२६६] (इन्द्रः) इन्द्र (हूयमानं) बुलानेवालेकी प्रार्थनाको (कथा शृणोति) कैसे सुनता है ? तथा (शृण्वन्) प्रार्थनाको सुनकर वह इन्द्र (अस्य अवसां कथा वेद) इस स्तोताके संरक्षणके मार्गको कैसे जानता है ? (अस्य पूर्वीः उपमातयः काः) इसके बहुतसे दान कौन कौनसे हैं ? तथा (जरित्रे पपुरिं एनं) स्तोताकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इसका लोग (कथं आहुः) किस प्रकार वर्णन करते हैं ? ॥ ३ ॥

[२६७] (स-बाधः शशमानः दीध्यानः) आपत्तियोंमें पडा हुआ और स्तुति करनेवाला तेजस्वी यजमान (अस्य द्रविणं कथा अभिनशत्) इस इन्द्रके धनको कैसे प्राप्त करेगा ? (जगृभ्वान्) शत्रुओंको पकडनेवाला इन्द्र (यत् नमः जुजोषत्) जब अन्नका सेवन करता है. तब वह (देवः) देव इन्द्र (मे ऋतानां नवेदाः भुवत्) मेरे यज्ञोंको अच्छी तरह जाननेवाला होता है ॥ ४ ॥

[२६८] (देवः) यह देव इन्द्र (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस उषःकालके उदय होने पर (मर्त्यस्य सख्यं) मनुष्यकी मित्रताको (कथा कद् जुजोष) कैसे और कब प्राप्त करेगा ? (ये अस्मिन् सु- युजं कामं ततस्रे) जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रोंके लिए (अस्य सख्यं कत् कथा) इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी ? ॥ ५ ॥

१ ये अस्मिन् सुयुजं कामं ततस्रे, सखिभ्यः अस्य सख्ये कथा — जो भक्त इसमें अपनी सुयोग्य कामना सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिये इसकी मित्रकी कब प्राप्त होगी ?

भावार्थ— वह इन्द्र बुलानेवालेकी प्रार्थनाको कैसे सुनता है ? प्रार्थनाको सुनकर भी वह स्तोताकी रक्षा किस तरह करता है ? स्तोताओंको दिए जानेवाले इसके दान कौन कौनसे हैं ? कामनाओंको पूरा करनेवाले इस इन्द्रका लोग किस तरह वर्णन करते हैं ? यह भी आश्चर्यकारक बातें हैं ॥ ३ ॥

जब कोई भक्त आपत्तिमें पड जानेके कारण सच्चे हृदयसे इन्द्रकी प्रार्थना करता है, तब वह इन्द्रके धनको किस तरह प्राप्त करता है, अर्थात् इन्द्र अपने इस भक्तकी रक्षा कैसे करता है, यह जानना कठिन है। शत्रुओंको पकडनेवाला यह इन्द्र भक्तोंके द्वारा दिए गए अन्नका सेवन करता है, तब वह यज्ञोंको अच्छी तरह जानता है ॥ ४ ॥

जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिए इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी और यह देव इन्द्र भी मनुष्यकी मित्रता किस तरह प्राप्त करेगा इसका मार्ग खोजना चाहिए ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६९ किमा॒दम॑त्रं स॒ख्यं सखि॑भ्यः क॒दा नु ते॑ भ्रा॒त्रं प्र ब्र॑वाम ।
श्रि॒ये सु॒दृशो॒ वपु॑रस्य॒ सर्गाः॒ स्व१॒॑र्ण चि॒त्रत॑ममिष॒ आ गोः ॥ ६ ॥
२७० द्रु॒हं जिघां॑सन् ध्व॒रस॑मनि॒न्द्रां तेति॑क्ते ति॒ग्मा तु॒जसे॒ अनी॑का ।
ऋ॒णा चि॒द् यत्र॑ ऋण॒या न॑ उ॒ग्रो दू॒रे अज्ञा॑ता उ॒षसो॑ बबा॒धे ॥ ७ ॥
२७१ ऋ॒तस्य॒ हि शु॒रुधः॒ सन्ति॑ पू॒र्वीर्ऋ॒तस्य॑ धी॒तिर्वृ॑जि॒नानि॑ हन्ति ।
ऋ॒तस्य॒ श्लोको॑ बधि॒रा त॑तर्द॒ कर्णा॑ बु॒धा॒नः शु॒चमा॑न आ॒योः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२६९] हम (सखिभ्यः) मित्रोंके सामने तेरी (अमत्रं सख्यं) शत्रुके आक्रमणसे रक्षा करनेवाली मित्रताका (किं आत् प्रब्रवाम) किस तरह वर्णन करें, तथा (ते भ्रात्रं) ते भ्रातृत्वका वर्णन हम (कदा) कब करें ? (सुदृशः अस्य) सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्रकी (सर्गाः श्रिये) सृष्टियां सबके आश्रयके लिए हैं। (स्वः न) सूर्यके समान तेजस्वी और (गोः) सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके (चित्रतमं वपुः) अत्यन्त सुन्दर तेजको सब (आ इषे) चाहते हैं ॥ ६ ॥

१ अस्य सुदृशः सर्गाः श्रिये— इस सुन्दर इन्द्रकी रचनाएं सबके आश्रय करनेके लिये हैं।
२ अम-त्रं सख्यं प्र ब्रवाम— शत्रुसे रक्षण करनेवाली मित्रताका हम वर्णन करते हैं।
३ स्वः न, गोः चित्रतमं वपुः आ इषे— सूर्यके समान तेजस्वी और सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके अत्यन्त सुन्दर तेजको सब चाहते हैं।

[२७०] (द्रुहं, ध्वरसं, अन्-इन्द्रां जिघांसन्) द्रोह करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रने (तुजसे) उन्हें मारनेके लिए (तिग्मा अनीका) तीक्ष्ण शस्त्रोंको (तेतिक्ते) और ज्यादा तीक्ष्ण किया। (ऋण-या उग्रः) ऋणको दूर करनेवाला और वीर इन्द्र (अज्ञाताः उषसः) आनेवाली उषाओंमें (नः ऋणा चित्) हमारे ऋणोंको भी (दूरे बबाध) दूरसे ही नष्ट करता है ॥ ७ ॥

१ द्रुहं, ध्वरसं, अनिन्द्रां जिघांसन् तुजसे तिग्मा अनीका तेतिक्ते— द्रोही, विनाशक और नास्तिकको मारनेके लिये इन्द्रने तीक्ष्ण आयुधों को अधिक तीक्ष्ण किया।
२ ऋणया उग्रः नः ऋणा दूरे बबाध— ऋण दूर करनेवाले इन्द्रने हमारे ऋणोंको दूर किया।

[२७१] (ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति) ऋतकी शक्तियां बहुत हैं, (ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति) ऋतकी बुद्धि पापोंको नष्ट कर देती है। (ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः) ऋतके ज्ञानयुक्त और तेजस्वी स्तोत्र (आयोः कर्णा बधिरा ततर्द) मनुष्यके कानोंको बहरा कर देते हैं ॥ ८ ॥

१ ऋत-- सत्य, ठीक, यज्ञ, पानी, आदरणीय, उचित
२ ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति— उचित कर्तव्यकी शक्तियां अनन्त हैं, पहिलेसे हैं।
३ ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति— उचित बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।
४ ऋतस्य बुधान; शुचमानः श्लोकः आयोः कर्णा बधिरा ततर्द— सत्यके ज्ञानमय और शुद्ध स्तोत्र मनुष्यके कानोंको बधिर करते हैं। इतने वे स्तोत्र बडे होते हैं।

भावार्थ— सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्रकी सृष्टिभी सुन्दर है। यह सृष्टि त्यागने योग्य नहीं है, यह सबके आश्रय लेनेके योग्य है। इसी सृष्टिमें रहकर इन्द्रके सुन्दर तेजको प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६ ॥

द्रोह करनेवाले, हिंसा करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेके लिए इन्द्र अपने शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है। वह इन्द्र ऋणोंको दूर करनेवाला है। वह हमारे ऊपर लदे हुए ऋणोंको भी दूर करे ॥ ७ ॥

उत्तम कर्तव्यमें अनन्त शक्तियां भरी होती हैं। उत्तम बुद्धियां पापोंको नष्ट करती हैं। उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानोंको बहरा कर देती हैं अर्थात् उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानोंको अच्छी नहीं लगतीं, इसलिए वह मानों उन स्तुतियोंके प्रति बहरा बन जाता है ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७२ ऋतस्य॑ दृ॒ळ्हा ध॒रुणा॑नि सन्ति पु॒रूणि॑ च॒न्द्रा व॒पुषे॒ वपूं॑षि ।
ऋ॒तेन॑ दी॒र्घमि॑षणन्त॒ पृक्ष॑ ऋ॒तेन॒ गाव॑ ऋ॒तमा वि॑वेशुः ॥ ९ ॥

२७३ ऋ॒तं येमा॑न ऋ॒तमिद् व॑नोत्यृ॒तस्य॒ शुष्म॑स्तुर॒या उ॑ ग॒व्युः ।
ऋ॒ताय॑ पृ॒थ्वी ब॑हु॒ले ग॑भी॒रे ऋ॒ताय॑ धे॒नू प॑र॒मे दु॑हाते ॥ १० ॥

२७४ नू ष्टु॒त इ॑न्द्र॒ नू गृ॑णा॒न इषं॑ जरि॒त्रे न॒द्यो॒३॑ न पी॑पेः ।
अका॑रि ते हरिवो॒ ब्रह्म॒ नव्यं॑ धि॒या स्या॑म र॒थ्य॑: सदा॒साः ॥ ११ ॥

[२४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।]

२७५ का सु॑ष्टु॒तिः शव॑सः सू॒नुमिन्द्र॑मर्वाची॒नं राध॑स॒ आ व॑वर्तत् ।
द॒दिर्हि वी॒रो गृ॑ण॒ते वसू॑नि॒ स गोप॑ति॒र्नि॒ष्षिधां॑ नो जनासः ॥ १ ॥

अर्थ—[२७२] (वपुषे ऋतस्य वपूंषि) बलवान् ऋतके शरीर (दृळ्हा, धरुणानि चन्द्रा पुरूणि) दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और बहुतसे (सन्ति) हैं। लोग (ऋतेन) ऋतसे (दीर्घं पृक्षः इषणन्त) बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। (ऋतेन गावः ऋतं आ विवेशुः) ऋतकी सहायतासे गायें यज्ञमें प्रविष्ट होती हैं ॥ ९ ॥

१ ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा, धरुणानि, चन्द्रा पुरूणि सन्ति— सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनंददायी और अनेक होते हैं।

२ ऋतेन दीर्घं पृक्षः इषणन्त— सत्यसे बहुत अन्न लोग चाहते है। सत्यके पालनसे बहुत लाभ होते हैं।

[२७३] (ऋतं येमानः ऋतं इत् वनोति) ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है, (ऋतस्य शुष्मः तुरया उ गव्युः) ऋतका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। (ऋताय बहुले गभीरे पृथ्वी) ऋतके लिए विस्तीर्ण और गंभीर द्यावापृथिवी और (ऋताय परमे धेनू दुहाते) ऋतके लिए ही उत्कृष्ट गायें दुहती हैं ॥ १० ॥

[२७४] (नद्यः न) जिस प्रकार नदियां जलसे पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र! (स्तुतः गृणानः) तेरी स्तुती और प्रशंसा करनेपर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण करता है। मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिपूर्वक नया स्तोत्र बनाया है। हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२४]

[२७५] (का सु- स्तुतिः) कौनसी उत्तम स्तुति (शवसः सूनुं अर्वाचीनं इन्द्रं) बलके लिये प्रसिद्ध और हमारी तरफ आनेवाले इन्द्रको हमें (राधसे आ ववर्तत्) धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी ? हे (जनासः) मनुष्यो! (वीरः गोपतिः इन्द्रः) वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र (निष्षिधां वसूनि) शत्रुओंके धनोंको (गृणते नः ददिः हि) स्तुति करनेवाले हमें देगा! ॥ १ ॥

१ वीरः निः षिधां वसूनि गृणते ददिः— शूरवीर शत्रुके धनोंको स्तुति करनेवालेको देता है।

भावार्थ— सत्य अर्थात अविनाशी देवके शरीर दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और अनेक हैं। मनुष्य इस अविनाशी देवको प्रसन्न करके बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। इस अविनाशी देवकी सहायतासे गायें अर्थात् इन्द्रियां उत्तम कर्मकी तरफ प्रवृत्त होती हैं ॥ ९ ॥

ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है। इस अविनाशी देवका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। इसी देवसे प्रेरित होकर द्युलोक और पृथ्वीलोक विस्तीर्ण और गंभीर हुए हैं। इसी देवसे प्रेरित होकर गायें उत्तम पदार्थ दुहती हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

हे ज्ञानियो! वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र हमें शत्रुओंका धन देगा भला? यदि देगा तो वह कौनसी स्तुति है, जो इन्द्रको हमें धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी? ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७६ स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
२७७ तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागमुभयासो अग्मन् नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
२७८ क्रतूयन्ति क्षितयो योगे उग्राऽऽशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद् विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

अर्थ— [२७६] (सः वृत्रहत्ये यामन् हव्यः) वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य है, (सः ईड्यः) वह प्रशंसनीय है, (सः सु-स्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः) वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करने पर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है, (सः मघवा) वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (ब्रह्मण्यते सुष्वये मर्त्याय) स्तुति करनेवाले तथा सोम तैय्यार करनेवाले मनुष्यके लिए (वरिवः धात्) श्रेष्ठ धन देता है ॥ २ ॥

१ सः सुस्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः— वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करनेपर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है ।

[२७७] (नरः) मनुष्य (समीके तं इत् विह्वयन्ते) युद्धमें उसी इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं । (यत्) जब (रिरिक्वांसः) तपसे तेजस्वी मनुष्य इन्द्रको (तन्वः त्राम् कृण्वत) अपने शरीरका रक्षक बनाते हैं तब (उभयासः नरः मिथः) दोनों तरहके मनुष्य संगठित होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र और पौत्रकी प्राप्ति (त्यागं अग्मन्) करानेवाले उस इन्द्रके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ नरः समीके तं विह्वयन्त— मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिये उस वीरको बुलाते हैं ।

२ रिरिक्वांसः तन्वः त्रां कृण्वत— तेजस्वी लोग अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं ।

३ उभयासः नरः मिथः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्— दोनों प्रकारके लोग परस्पर पुत्र पौत्रोंके लाभके लिये त्याग करते हैं अपने बालबच्चोंके लाभ करनेके लिये स्वयं त्याग करते हैं ।

[२७८] (उग्राः अशुषाणासः क्षितयः) वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य (मिथः) मिलकर (अर्णसातौ योगे) धनादिकी प्राप्ति होनेवाले युद्धमें (क्रतूयन्ति) पराक्रम करते हैं । (यत् युध्माः विशः अभीके अववृत्रन्त) जब युद्ध करनेवाली प्रजायें युद्धमें संगठित होती हैं (आत् इत् नेमे) तब युद्ध ही करनेवाले (इन्द्रयन्ते) इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति— उग्र प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश मिलनेके लिये प्रयत्न करते हैं ।

२ युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते— युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाते हैं ।

भावार्थ— वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है, वह प्रशंसनीय है । वह उत्तम स्तुति करनेवालेको सच्चे तथा अविनाशी ऐश्वर्य प्रदान करता है । वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तुति तथा सोम तैयार करनेवालेको श्रेष्ठ धन देता है ॥ २ ॥

मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिए उस वीरको बुलाते हैं । तेजस्वी जन अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं । शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग पुत्र- पौत्रोंके लाभके लिए त्याग करते हैं । अपने बालबच्चोंके सुखके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं ॥ ३ ॥

वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य संगठित होकर धनप्राप्तिके लिए युद्धमें पराक्रम करते हैं । जब प्रजायें पहले स्वयं संगठित होकर अपना पराक्रम दिखाती हैं, तभी इन्द्र भी उनकी सहायताके लिए आता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७९ आदिद्ध नेमं इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो वि पपृच्यादसुष्वी—नादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥

२८० कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थे—न्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥

२८१ य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन् तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥

अर्थ— [२७९] (आत् इत्) इसके बाद (नेमे) योद्धागण (इन्द्रियं यजन्ते) इन्द्रकी शक्तिका यजन करते हैं, (आत् इत्) इसके बाद (पक्तिः) पकाने वाला (पुरोळाशं रिरिच्यात्) पुरोडाशको पकाता है, (आत् इत्) इसके बाद ही (सोमः) सोमयज्ञ करनेवाला (असुष्वीन् पपृच्यात्) सोमयाग न करनेवालोंको दूर करता है। (आत् इत्) इसके बाद (यजध्यै वृषभं) यज्ञके लिए बलवान् इन्द्रकी (जुजोष) सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

१ नेमे इन्द्रियं यजन्ते— कई वीर इंद्रियशक्तिसे सम्पन्न वीरको संमानित करते हैं।

२ वृषभं जुजोष— बलवान्‌की सेवा करते हैं।

[२८०] (इत्था) इस प्रकार (यः) जो हित करनेकी (उशते इन्द्राय) इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनोति) सोम निचोडता है, (अस्मै) इसके लिए यह इन्द्र (वरिवः कृणोति) धन देता है। यह इन्द्र (सध्रीचीनेन मनसा अविवेनन्) उत्तम मनसे [उस मनुष्यकी] हित करनेकी इच्छा करता हुआ (समत्सु) युद्धोंमें (तं इत् सखायं कृणुते) उसीको मित्र बनाता है ॥ ६ ॥

१ सध्रीचीनेन मनसा अविवेनन् समत्सु तं सखायं कृणुते— उत्तम मनसे जनहित करनेकी इच्छासे युद्धोंमें उसको ही वह मित्र करता है। सदिच्छावालेको मित्र करता है।

[२८१] (अद्य) आज (यः) जो (इन्द्राय सोमं सुनवत्) इन्द्रके लिए सोम निचोडेगा, (पक्तीः पचात्) पुरोडाश पकायेगा, (उत) और (धानाः भृज्जाति) धानकी खीलोंको भूनेगा, (तस्मिन्) उसके लिए (मनायोः) उत्तम मनवाला (इन्द्रः) इन्द्र (उचथानि हर्यन्) स्तोत्रोंको सुनता हुआ (वृषणं शुष्मं दधत्) अत्यन्त उत्तम बलको देगा ॥ ७ ॥

१ मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्— मननशील वीर बलिष्ठको अधिक बल देता है। जो मननशील वीर अपना बल बढानेका यत्न करता है उसका बल वह बढाता है।

भावार्थ— इन्द्रकी पूजा सभी करते हैं, पर पूजा करनेके ढंग अलग अलग हैं। योद्धागण इन्द्रके शक्तिकी पूजा करते हैं और याजक गण सोम रसको प्रदान करके इन्द्रकी पूजा करते हैं। ये याजकगण सोमयज्ञ न करनेवाले नास्तिकोंको दूर करते हैं। तब वे बलवान् इन्द्रकी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

जो मनुष्य हित करनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, उसे यह इन्द्र भी धन प्रदान करता है यह इन्द्र उत्तम मनसे हित करनेकी इच्छा करता हुआ युद्धोंमें उसी सोमयज्ञ करनेवालेको मित्र बनाता है। उसीकी वह सहायता करता है ॥ ६ ॥

जो इन्द्रके लिए सोम निचोडकर, पुरोडाश पकाकर उसे देगा, उसे इन्द्र उसकी प्रार्थनाओंको सुनकर अत्यन्त उत्तम बल देगा ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८२ यदा सम॒र्यं॒ व्यचे॒दृघा॑वा दी॒र्घं यदा॒जिम॒भ्यख्य॑द॒र्यः ।
अचि॑क्रदु॒द् वृष॑णं॒ पत्न्यच्छा॑ दु॒रो॒ण आ निशि॑तं सोम॒सुद्भिः॑ ॥ ८ ॥

२८३ भूय॑सा व॒स्नम॑चर॒त् कनी॒यो॒ऽवि॑क्रीतो अकानि॒षं पु॒नर्यन् ।
स भूय॑सा॒ कनी॑यो॒ नारि॑रेचीद् दी॒ना दक्षा॑ वि दु॑हन्ति॒ प्र वा॒णम् ॥ ९ ॥

२८४ क इ॒मं द॒शभि॒र्ममे॒न्द्रं॑ क्रीणाति धे॒नुभिः॑ ।
य॒दा वृ॒त्राणि॒ जङ्घ॑न॒दथै॑नं मे॒ पुन॑र्ददत् ॥ १० ॥

२८५ नू ष्टु॒त इ॑न्द्र॒ नू गृ॑णा॒न इषं॑ जरि॒त्रे न॒द्यो॒३॑ न पी॑पेः ।
अका॑रि ते हरिवो॒ ब्रह्म॒ नव्यं॑ धि॒या स्या॑म र॒थ्यः॑ सदा॒साः ॥ ११ ॥

अर्थ— [२८२] (यदा) जब (ऋघावा) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (समर्यं वि अचेत्) अपने युद्धके वीरोंको विशेषरीतिसे जानता है, (यदा) जब (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र (आजिं अभि अख्यत्) युद्धका वर्णन करता है, तब (दुरोणे) घरमें (पत्नी) इस इन्द्रकी पत्नी (सोमसुद्भिः निशितं) सोम इस निकालनेवालोंके द्वारा उत्साहित किए गए तथा (वृषणं) बलवान् इन्द्रके (अचिक्रदत्) यशका वर्णन करती है ॥ ८ ॥

[२८३] किसीने (भूयसा कनीयः वस्नं अचरत्) बहुत धन देकर थोडीसी चीज प्राप्त की, जब वह चीज (अविक्रीतः) कहीं विकी नहीं, तो (पुनः यन्) उसने फिर जाकर (अकानिषं) पैसे वापिस मांगे, (सः भूयसा कनीयः न अरि रेचीत्) वह बेचनेवाला बहुत धन देकर थोडीसी चीज लेनेको तैय्यार न हुआ। (दीनाः दक्षाः) असमर्थ और चतुर (वाणं) जो कुछ बोल देते हैं, उसीको (वि प्र दुहन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

[२८४] (मम इमं इन्द्रं) मेरे इस इन्द्रको (दशभिः धेनुभिः कः क्रीणाति) दस गायोंसे कौन खरीद सकता है? हे खरीदनेवालो! (यदा) जब यह इन्द्र (वृत्राणि जंघनत्) शत्रुओंको मार देगा (अथ) तब (एनं मे पुनः ददत्) इस इन्द्रको मुझे फिर वापस कर दो ॥ १० ॥

[२८५] (नद्यः न) जिसतरह नदियां जलोंसे पूर्ण हो जाती हैं, उसी तरह हे इन्द्र! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर। मैंने (ते) तेरे लिए (धिया) बुद्धिसे (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (अकारि) किया है, हम (रथ्यः सदासः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ— जब कोई वीर योद्धा युद्धके तरीकोंको विशेष रीतिसे जान जाता है और वह युद्धका वर्णन करता है, तब घरमें बैठी हुई उसकी पत्नी भी अपने पराक्रमी पतिका वर्णन करती है, उसकी प्रशंसा करती है ॥ ८ ॥

मनुष्य अपनी आत्मारूपी अपार धनके बदलेमें संसारसुख रूपी अल्पसे पदार्थको ले लेते हैं, पर जब संसारसुख उन्हें किसी कामका प्रतीत नहीं होता, तब वे फिर संसारसुखके बदलेमें आत्मरूपी धनको लेना चाहते हैं, पर वह उन्हें नहीं मिल पाता, क्योंकि वे जो कुछ वाणीसे बोलते या कर्मसे करते हैं, उसीका फल वे प्राप्त करते हैं। यह मंत्र प्रतीक वादी है ॥ ९ ॥

मेरे इन्द्रको इस गायोंके बदलेमें कौन खरीद सकता है? जो खरीदे, वह अपना काम करनेके बाद इन्द्र मुझे लौटा दे। मंत्रका रहस्य अस्पष्ट है ॥ १० ॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं अतः तू जैसे नदियाँ मनुष्योंको पानी देती हैं उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[२५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८६ को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥
२८७ को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २ ॥
२८८ को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यां ऽशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३ ॥
२८९ तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंस ज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥

---

[२५]

अर्थ— [२८६] (अद्य) आज (देवकामः उशन्) देवोंकी इच्छा करता हुआ तथा कामना करता हुआ (कः नर्यः) कौन मनुष्य (इन्द्रस्य सख्यं जुजोष) इन्द्रकी मित्रता प्राप्त करता है (वा) अथवा (सुतसोमः कः) सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान (अग्नौ समिद्धे) अग्निके प्रज्वलित होने पर (पार्याय महे अवसे) दुःखोंसे पार होनेके लिये तथा बडे संरक्षणके लिए इन्द्रकी (ईट्टे) स्तुति करता है ॥ १ ॥

[२८७] ((सोम्याय) सोमको पीनेवाले इस इन्द्रकी (कः वचसा ननाम) कौन अपनी वाणीसे स्तुति करता है ? (वा) अथवा कौन इसका (मनायुः भवति) भक्त होना चाहता है ? कौन (उस्राः वस्त) गायोंको पालता है ? (इन्द्रस्य युज्यं कः) इन्द्रकी सहायताको कौन चाहता है, (सखित्वं कः) उसकी मित्रताको कौन चाहता है, (कः भ्रात्रं वष्टि) कौन उसके भाईपनेकी कामना करता है, तथा (कवये) उस दूर दर्शी इन्द्रको (कः ऊती) कौन अपने संरक्षणके लिये चाहता है ? ॥ २ ॥

[२८८] (अद्य) आज (देवानां अवः कः वृणीते) देवोंके संरक्षणको कौन पाता है ? तथा (आदित्यान्, अदितिं ज्योतिः) आदित्यों, अदिति और ज्योति रूपी उषाकी (कः ईट्टे) कौन स्तुति करता है ? (अश्विनौ, इन्द्रः अग्निः) अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि (कस्य सुतस्य अंशोः) किसके निचोडे हुए सोम रसका (मनसा अविवेनं पिबन्ति) मनसे इच्छानुसार पीते हैं ? ॥ ३ ॥

[२८९] (यः) जो (नरे नर्याय नृणां नृतमाय) आगे ले जानेवाले, मनुष्योंका हित करनेवाले तथा नेताओंमें सर्वोत्तम नेता (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (सुनवाम इति आह) सोम रस निकाले, ऐसा कहता है, (तस्मै) उसके लिए (भारतः अग्निः) भरणपोषण करनेवाला अग्नि (शर्म यंसत्) सुख देवे, तथा वह मनुष्य (उच्चरन्तं सूर्यं) उदय होते हुए सूर्यको (ज्योक् पश्यात्) बहुत कालतक देखे ॥ ४ ॥

१ उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्यात्— उदय होनेवाले सूर्यको दीर्घ कालतक देखे । दीर्घायु हो ।

भावार्थ— देवोंकी इच्छा और कामना करता हुआ कौनसा मनुष्य इन्द्रकी मित्रता चाहता है ? अथवा सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान अग्निके प्रज्वलित होने पर दुःखोंसे पार होनेके लिए इन्द्रकी स्तुति करता है ? ॥ १ ॥

सोम पिलानेसे पूर्व इस इन्द्रकी स्तुति कौन करता है ? इसका भक्त कौन हो सकता है ? इन्द्रका मित्र कौन है ? उसकी मित्रताको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उसके भ्रातृत्वको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उस दूरदर्शी इन्द्रको कौन अपने संक्षरणके लिए बुलाना चाहता है ? यह बातें मननीय हैं ॥ २ ॥

देवोंके संरक्षणको कौन प्राप्त करता है ? आदित्य, अदिति और ज्योति अर्थात् प्रकाशकी कौन स्तुति करता है ? अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि आदि देव किसके द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको मनःपूर्वक पीनेकी इच्छा करते हैं ? ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९० न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५ ॥
२९१ सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
२९२ न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२९०] (तं) उस मनुष्यको (दभ्राः बहवः) थोडे और बहुतसे शत्रु भी (न जिनन्ति) नहीं जीत सकते, तथा (अदितिः) अदिति (अस्मै उरु शर्म यंसत्) इसके लिए महान् सुख देती है। (इन्द्रे) इन्द्रके लिए (सुकृत् प्रियः) उत्तम कर्म करनेवाला प्रिय होता है, (मनायुः प्रियः) यज्ञ करनेवाला प्रिय होता है, (सु-प्र-अवीः प्रियः) उत्तम मार्गसे जानेवाला इसे प्रिय होता है, तथा (सोमी अस्य प्रियः) सोम यज्ञ करनेवाला इस इन्द्रका प्यारा होता है ॥ ५ ॥

१ तं दभ्राः बहवः न जिनन्ति— उसको थोडे या बहुत शत्रु नहीं जीत सकते।
२ अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्— प्रकृति उसको बडा सुख देती है।
३ इन्द्रे सुकृत्, मनायुः, सुप्रावीः प्रियः— इन्द्रको उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला प्रिय होता है।

[२९१] (प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः) शत्रुओंको मारनेवाला यह वीर इन्द्र (केवला) केवल (सु-प्र-अव्यः सुष्वेः) उत्तममार्ग पर चलनेवाले तथा सोम तैयार करनेवाले मनुष्यके ही (पक्तिं कृणुते) पुरोडाशको स्वीकार करता है। यह इन्द्र (असुष्वेः आपिः न) सोमयाग न करनेवालेका मित्र नहीं होता (न सखा) न सखा होता है (न जामिः) न भाई होता है अपितु (दुष्प्राव्यः अ-वाचः अवहन्ता इत्) बुरे मार्ग पर चलनेवाले और स्तुति न करनेवालेको यह मारनेवाला ही होता है ॥ ६ ॥

१ दुष्प्राव्यः अवाचः अव हन्ता वीरः— बुरे मार्गसे जानेवालेका, स्तुति न करनेवालेका मारनेवाला यह वीर है।
२ प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः केवला सु-प्र-अव्ययः पक्तिं कृणुते — शत्रुओंका संहारक यह वीर इन्द्र केवल उत्तम मार्ग पर चलनेवालेकी हविको ही स्वीकार करता है।

[२९२] (सुत-पाः इन्द्रः) सोमरसको पीनेवाला यह इन्द्र (असुन्वता रेवता पणिना) सोम न निचोनेवाले धनवान् पर कंजूस मनुष्यके साथ (सख्यं न सं गृणीते) मित्रता नहीं जोडता। वह इन्द्र (अस्य नग्नं वेदः खिदति) इस कंजूसके निरर्थक धनको नष्ट कर देता है, (हन्ति) और कंजूसको मार देता है, वह (केवला) केवल (सुष्वये वक्तये वि भूत्) सोमयज्ञ करनेवाले तथा पुरोडाश पकानेवालेका ही मित्र होता है ॥ ७ ॥

१ इन्द्रः रेवता पणिना सख्यं न सं गृणीते — यह इन्द्र धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ मित्रता नहीं जोडता।
२ अस्य नग्नं वेदः खिदति — ऐसे कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है।

भावार्थ— जो मनुष्य ऐसा कहता है कि 'हम इन्द्रके लिए सोम तैय्यार करें' ऐसे नेता, मानवोंके हितकारी मनुष्योंकों भरणपोषण करनेवाला अग्नि सुख प्रदान करे और ऐसा सर्वोत्तम मनुष्य उदय होते हुए सूर्यको चिरकाल तक देखे अर्थात् वह दीर्घकाल तक जीवित रहे ॥ ४ ॥

जो श्रेष्ठ नेता और प्रजाओंका हित करनेवाला मनुष्य है, उस मनुष्यको थोडोंकी तो बात ही क्या, बहुत सारे शत्रु भी मिलकर नहीं जीत सकते। अदिति अविनाशी माता ऐसे मनुष्यको महान् सुख देती है। इन्द्रको उत्तम कर्म करनेवाला, यज्ञ करनेवाला, उत्तम मार्गसे जानेवाला मनुष्य ही प्रिय होता है ॥ ५ ॥

शत्रुओंका विनाशक यह इन्द्र केवल उन्हींकी हवियोंको स्वीकार करता है, जो उत्तम मार्गसे जाते हैं। यह इन्द्र यज्ञ आदि उत्तम कर्म करनेवालेका न मित्र होता है और न भाई, वह तो ऐसे बुरे मार्ग पर चलनेवाले नास्तिकोंको मारनेवाला ही होता है ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९३ इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्तं उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

[२६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः १-३ इन्द्रो वा। देवता- १-३ इन्द्रः, आत्मा वा, ४-७ श्येनः। छन्दः-त्रिष्टुप्।]

२९४ अहं मनुरभवं सूर्यश्चाऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
२९५ अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

अर्थ— [२९३] (परे अवरे मध्यमासः) उत्तम अधम और मध्यम कोटिके लोग (इन्द्रं हवन्ते) इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं। (यान्तः अवसितासः इन्द्रं) चलते हुए और बैठे हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं। (क्षियन्तः युध्यमानाः इन्द्रं) घरमें बैठे हुए और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं, तथा (वाजयन्तः नरः इन्द्रं हवन्ते) अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[२६]

[२९४] (अहं मनुः अभवं) मैं मनु हुआ हूँ (अहं सूर्यः च) मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही (विप्रः कक्षीवान् ऋषिः) बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। (अहं आर्जुनेयं कुत्सं नि ऋंजे) मैंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है, (अहं कविः उशना) मैं ही दूरदर्शी उशना ऋषि हूँ, (मा पश्यत) मुझे देखो ॥ १ ॥

[२९५] (अहं आर्याय भूमिं अददां) मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी, (अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं) मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। (अहं वावशानाः अपः अनयं) मैं ही शब्द करते हुए जलोंको आगे ले गया, और (देवासः मम केतं अनु आयन्) देव मेरे संकल्पके पीछे चले ॥ २ ॥

१ अहं आर्याय भूमिं अददां— मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी।
२ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं— मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया।

भावार्थ— सोमको पीनेवाला वह इन्द्र यज्ञ न करनेवाले, धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवालेके साथ मित्रता नहीं जोडता। ऐसे कंजूस मनुष्यका धन पडा पडा रोता रहता है। इन्द्र ऐसे कंजूसके धनको नष्ट कर देता है और उस कंजूसको भी मार देता है। वह इन्द्र तो केवल यज्ञ करनेवाले और हवि देने वाले मनुष्यसे ही मित्रता करता है ॥ ७ ॥

उत्तम, अधम और मध्यम कोटिके लोग, चलते हुए बैठे हुए, और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं, इसी तरह अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

मैं इन्द्र या आत्मा ही मनु हुआ हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। मैंने ही अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है। मैं ही दूरदर्शी उशना कवि हूँ ॥ १ ॥

मुझ इन्द्रने ही श्रेष्ठ पुरुषोंके निवास करनेके लिए भूमि दी। मैंने ही दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। मैंने ही शब्द करते हुए बहनेवाले जलोंके प्रवाहोंको प्रेरित किया। सभी देव मुझ इन्द्रके पीछे चलते हैं। इन्द्र परमात्मा है, इसी परमात्माकी आज्ञाके अनुसार सभी देव चलते हैं ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९६ अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥
२९७ प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
२९८ भरद् यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
२९९ ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद् दादृहाणो देवावान् दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

अर्थ— [२९६] (अहं मन्दसानः) मैंने आनन्दसे (शम्बरस्य नवः नवतीः पुरः) शम्बरासुरके निन्यानवे नगरोंको (साकं वि ऐरं) एक साथ नष्ट किया। तथा (यत्) जब (सर्वताता) यज्ञमें मैंने (अतिथिग्वं दिवोदासं) अतिथियोंको गौवें देनेवाले दिवोदासकी (आवं) रक्षा की, तब उसके लिए (शततमं वेश्यं) सौवे नगरको रहने योग्य बनाया ॥ ३ ॥

१ अहं शंबरस्य नवनवतीः पुरः साकं वि ऐरं— मैंने शंबरासुरकी निन्यानवे पुरियोंको एक साथ तोडा।

२ शततमं वेश्यं— सोवे नगरको रहने योग्य बनाया।

[२९७] (यत् सुपर्णः) जो उत्तम शक्तिशाली पंखोंवाला पक्षी (अचक्रया स्वधया) अपनी कभी श्रान्त न होनेवाली शक्तिसे (मनवे) मनुके लिए (देव जुष्टं हव्यं) देवोंको प्रिय लगनेवाली हविको (भरत्) ले आया, हे (मरुतः) मरुतो ! (सः विः) वह सुपर्ण पक्षी (विभ्यः प्र) अन्य पक्षियोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली (अस्तु) हो। वह (श्येनः) श्येन पक्षी (श्येनेभ्यः आशुपत्वा) अन्य श्येनपक्षीयोंसे शीघ्रगामी हो ॥ ४ ॥

[२९८] (यदि) जब (विः) पक्षी (वेविजानः) सब लोकोंको कंपाता हुआ सोमको (अतः भरत्) उस लोक अर्थात द्युलोकसे ले आया, तब वह (उरुणा पथा) विस्तृतमार्गमें (मनोजवा असर्जि) मनके वेगसे उडा। (उत) और वह पक्षी (सौम्येन मधुना) शान्ति प्रदान करनेवाले तथा मधुर रसको लेकर (तूयं ययौ) शीघ्रतासे आया, तब (श्येनः) उस श्येन पक्षीने (अत्र श्रवः विविदे) इस लोकमें यशको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[२९९] (परावतः अंशुं ददमानः) दूर देशसे सोमको लेकर (ऋजीपी) सरल मार्गसे जानेवाला, तथा (देवावान्) देवोंके साथ रहनेवाला (श्येनः शकुनः) श्येन पक्षी (मन्द्रं मदं सोमं) मधुर और आनन्ददायक सोम (अमुष्यात् उत्तरात् दिवः) उस ऊंचे द्युलोकसे (आदाय) लेकर (दादृहाणः) दृढ होकर (भरत्) ले आया ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैंने आनन्दसे शम्बरासुरकी निन्यानवे नगरियोंको तोडा। जब मैंने अतिथियोंको गायें देनेवाले दिवोदासकी रक्षा की, तब उसके लिए सौवें नगरको रहनेके योग्य बनाया ॥ ३ ॥

उत्तम शक्तियोंवाली यह जीवात्मा जब देवों अर्थात् विद्वानोंको प्रिय लगनेवाले उस परमात्मतत्त्व रूप अमृतको प्राप्त कर लेती है, तब वह आत्मा अन्य आत्माओंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और शीघ्रगामी हो जाती है ॥ ४ ॥

जब यह जीवात्मा द्युलोक रूपी ब्रह्मरन्ध्रमें प्रविष्ट होकर वहां अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेता है, तब उसके लिए असाध्य ऐसी कोई भी चीज नहीं रह जाती। इस अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेनेके बाद उसका जीवन शान्त और मधुर हो जाता है और वह महान् यशको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

यह श्येन पक्षी रूपी जीवात्मा सदा सरल मार्गसे जानेवाला, देवोंके साथ रहनेवाला है। यह द्युलोकसे सोम लाकर जब उसका आस्वादन करता है, तब वह बहुत शक्तिशाली हो जाता है ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३०० आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरंधिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥

[२७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- श्येनः, ५ इन्द्रो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ शक्वरी ।]

३०१ गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

३०२ न घा स मामप जोषं जभाराऽभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंधिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

३०३ अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद् यदि वात ऊहुः पुरंधिम् ।
सृजद् यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३००] (श्येनः) श्येन (सहस्रं अयुतं च सवान्) हजारों यज्ञोंके (साकं) साथ (सोमं आदाय अभरत्) सोमको लेकर उडा। (अत्र) इसके बाद (पुरंधिः अमूरः) अनेकों उत्तम कर्मोंको करनेवाले तथा बहुत ज्ञानवान् इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (मूराः) मूर्ख (अरातीः) शत्रुओंको (अजहात्) मारा ॥ ७ ॥

[२७]

[३०१] (गर्भे नु सन्) गर्भमें रहकर (अहं) मैंने (एषां देवानां) इन देवोंके (विश्वा जनिमानि अवेदम्) सब जन्मोंको जान लिया। (शतं आयसीः पुरः मा अरक्षन्) सौ लौहमय नगरियोंने मेरी रक्षा की। (अधः) इसके बाद (श्येनः) श्येन होकर मैं (जवसा निः अदीयम्) वेगसे बाहर निकल आया ॥ १ ॥

[३०२] (सः) वह (मां जोषं न घ अप जभार) मुझे अच्छी तरह घेर नहीं पाया। मैंने ही (इदं) इसे (त्वक्षसा वीर्येण) तीक्ष्ण सामर्थ्यसे (अभि आस) घेर लिया। (ईर्मा) सबका प्रेरक (पुरंधिः) प्रज्ञावान् परमात्माने (आरातिः अजहात्) शत्रुओंको मारा। (शूशुवानः) परिपूर्ण परमात्माने (वातान्) वायुके समान वेगवान् शत्रुओंको भी मारा ॥ २ ॥

[३०३] (अध) तब सोम लानेके समय (यत्) जब (श्येनः) श्येनने (द्योः) द्युलोकसे (अव अस्वनीत्) गर्जना की, तब (पुरंधिं) बुद्धिको बढानेवाले सोमको सोमरक्षकोंने (अतः वि ऊहुः) इस श्येनसे छीनना चाहा, तब (मनसा भुरण्यन्) मनोवेगसे जानेवाले (अस्ता) धनुर्धारी (कृशानुः) कृशानुने (ज्यां क्षिपत्) डोरी चढाई, और (अस्मा अव सृजात्) इस श्येन पर तीर छोडा ॥ ३ ॥

भावार्थ— जब श्येन पक्षी द्युलोकसे इस सोमको लाया, तब उसके साथ ही वह अनेकों तरहके यज्ञ भी लेता आया। उन यज्ञमें इन्द्रको सोम दिया जाने लगा, तब उसने उस सोमके आनन्दमें बहुतसे मूर्ख शत्रुओंको मारा। इन्द्र स्वयं ज्ञानी है, इसलिए वह अज्ञानियोंका नाश करता है ॥ ७ ॥

जहां सोम रखा हुआ था, वह देवोंकी नगरी थी, और वह स्थान सौ लोहेके नगरोंसे सुरक्षित था, पर श्येन उन देवोंकी कोई परवाह न करके उन सौ नगरियोंको पार कर गया और वहां जाकर सोम लेकर वेगसे उन नगरियोंसे बाहर निकल आया ॥ १ ॥

श्येन रूपी यह जीवात्मा जब सोम लानेके लिए द्युलोककी तरफ जाता है, तब उसे अनेक विघ्न घेर लेते हैं और उसके मार्गमें रोडे अटकाते हैं, पर वे विघ्न उसे घेर नहीं पाते, इसके विपरीत वही आत्मा अपनी शक्तिसे इन विघ्नों पर विजय प्राप्त कर लेती है। ऐसे समय सबके प्रेरक परमात्मा भी इसके सहायक होते हैं ॥ २ ॥

सोम लाते समय श्येन और सोमरक्षकोंमें युद्ध छिड गया, तब श्येनने गर्जना की और दूसरी तरफ सोमरक्षक श्येनसे सोम छुडानेकी कोशिश करने लगे। तब उन सोमरक्षकोंमेंसे एकने अपने धनुष पर डोरी चढाई और श्येनकी तरफ एक तीर चला दिया ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

कम कीमतमें भरपूर साहित्यकी
स्वर्णिम योजना

सब सत्यविद्याओंसे सम्पन्न वैदिक-साहित्यको और अधिक लोकप्रिय बनानेके लिए हमने एक नवीन योजना बनाई है। इस योजनाके अन्तर्गत हमारे अमूल्य वैदिक प्रकाशनोंको बिल्कुल ही कम कीमत पर आप प्राप्त कर सकेंगे। इस योजनामें आनेवाली पुस्तकें निम्न हैं।

	पृष्ठ संख्या	पहलेका मूल्य	योजनान्तर्गत मूल्य
१ अथर्ववेद-पांच भागोंमें	१५००	रु. ६४	रु. ४४
२ सामवेद	४००	रु. २०	रु. १४
३ दैवतसंहिता (मूलमात्र)	१०००	रु. ३३	रु. २३
४ गीता पुरुषार्थबोधिनी	१०००	रु. ३३	रु. २३
		१५०	१०४

उपर्युक्त सभी पुस्तकोंमें (दैवत संहिताको छोडकर) देवनागरी लिपिमें मूलमंत्र अर्थ, भावार्थ, स्पष्टीकरण तथा व्याख्या है। ये पुस्तकें हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओंमें उपलब्ध हैं। यह स्वर्णिम योजना ३१ दिसम्बर १९६९ तकही रहेगी। अतः शीघ्रता करें और आज ही अपना आर्डर भेजें। पुस्तकोंके मूल्यमें डाकव्यय भी शामिल है। पर इन चारों पुस्तकोंको एक साथ मंगवाने वाले सिर्फ ९२ रु. भेजें। उनके लिए रेलभाडा और डाकव्यय मुफ्त होगा।

साइज डबल क्राउन आठ पृष्ठ. टाइप और छपाई सुन्दर। आज ही इन पुस्तकोंके लिए लिखें।

व्यवस्थापक,

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

पारडी (जि. बलसार) (गुजरात)

(१) पुस्तकोंका ऑर्डर भेजते समय इस विज्ञापनका उल्लेख अवश्य करें।
(२) ऑर्डरमें मराठी या हिन्दी भाषाका भी उल्लेख अवश्य करें।
(३) पुस्तकोंको रेलसे मंगवाने पर खर्च कम पडेगा।

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu